।। श्रीमते रामानुजाय नमः।।

# वैदिक-वाणी


| वर्ष- २१<br>दिसम्बर<br>सन्- २००७ | श्री पराङ्कुश संस्कृत संस्कृति संरक्षा परिषद्<br>हुलासगंज, जहानाबाद (बिहार) | अंक- १<br>रामानुजाब्द- ९९२<br>त्रैमासिक प्रकाशन |
|---|---|---|


आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते जीवितं
व्यापारैर्बहुकार्यभारगुरुभिः कालोऽपि न ज्ञायते।
दृष्ट्वा जन्मजराविपत्तिमरणं त्रासश्च नोत्पद्यते
पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत्।।

सूर्य के उदय तथा अस्त के साथ ही साथ आयु का भी क्षय क्षय होता रहता है। जीवन के विविध प्रकार के कर्तव्य कर्मों की व्यस्तता के बीच समय के बीतने का बोध ही नहीं रहता। आँखों के सामने ही जन्म, बुढ़ापा, संकट तथा मृत्यु के कष्टों को देखकर भी मन में भय का संचार नहीं होता। वास्तव में विस्मृतिरूपी मोह-मदिरा को पीकर यह संसार मतवाला हो रहा है। —वै०श०

# विषयानुक्रमणिका

आश्रम परिवार की ओर से प्रकाशित

**************


| क्रम सं० | विषय | पृ०सं० |
|---|---|---|
| १. | वैदिक-वाणी -सच्चे सन्त | ३ |
| २. | परतत्त्व एवं श्रीवैष्णव धर्म | ४ |
| ३. | शरणागति से कष्ट निवारण | ६ |
| ४. | भारतीय गरिमा की रक्षा | ७ |
| ५. | हनुमान की अलौकिक भक्ति एवं विद्वता | ९ |
| ६. | सीताजी स्वेच्छा से लङ्का गयी थीं | ११ |
| ७. | सामान्य और विशेष धर्म | १२ |
| ८. | श्रीराम ने छिपकर वाली को क्यों मारा? | १४ |
| ९. | गोपियों के प्रेम से उद्धव की तन्मयता | १६ |
| १०. | गुरु-शिष्य संवाद<br>पूँछ में लगी आग की ज्वाला से हनुमान कैसे बचे? | १७ |
| ११. | यज्ञ का स्वरूप एवं लाभ | १९ |
| १२. | परकालसूरि चरित्र | २० |
| १३. | प्रभु की निर्हेतुक कृपा | २१ |
| १४. | वास्तु-परामर्श | २३ |
| १५. | भागवत्कृपा से हुआ भारतवर्ष में जन्म | २४ |
| १६. | वरदवल्लभा स्तोत्र का अनुशीलन—(३) | २५ |
| १७. | मुहूर्त्त-विचार | २८ |
| १८. | यज्ञ-कार्यक्रम | २९ |
| १९. | वेदप्रतिपादित-यज्ञविज्ञान | ३० |


****

**नियमावली**

१. यह पत्रिका त्रैमासिक प्रकाशित होगी।
२. इस पत्रिका का वार्षिक चन्दा (अनुदान) २५ रुपये तथा आजीवन सदस्यता ४०१ रुपये मात्र है।
३. इस पत्रिका में भगवत् प्रेम सम्बन्धी, ज्ञान-भक्ति और प्रपत्ति के भावपूर्ण लेख या कवितायें प्रकाशित हो सकेगी।
४. किसी प्रकार का पत्र व्यवहार निम्नलिखित पते पर किया जा सकता है।
५. लेख आदि किसी भी प्रकार के संशोधन आदि का पूर्ण अधिकार सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

— **सम्पादक**


हुलासगंज, जहानाबाद (बिहार)

दूरभाष : ०६११४-२७१३०९

# वैदिक-वाणी

## सच्चे सन्त

जिस समय भक्त के हृदय में भगवत् प्रेम का प्रवाह उमड़ता है, उसी समय भक्त का मन प्रभु में संलग्न हो जाता है। जैसे जल से प्रेम रखने वाली मछलियों का जीवन जल के अधीन रहता है, उसी प्रकार भगवत् प्रेम में मग्न रहने वाले भक्त का जीवन भगवदाधीन होता है। वे भगवान को छोड़कर दूसरे की चर्चा कभी भी नहीं करना चाहते, वे सदा भगवान के दिव्य गुणों का स्मरण एवं उनके स्वरूप, गुण तथा विभूति का वर्णन करने में ही सन्तुष्ट रहते हैं।

वैसे सन्त सहस्रगीति में बक से उपमान किये गये हैं। जिस प्रकार बक पूर्ण सफेद रहता है उसी प्रकार सच्चे सन्त बाहर और भीतर से पूर्ण निर्मल होते हैं। जिस प्रकार मत्स्य पकड़ने के इच्छुक बगुला जलाशय के पास खड़ा होकर बड़ी सावधानी से देखता रहता है। वह पानी में छोटे-छोटे मछलियों को देखने पर उसकी उपेक्षा कर शान्ति से बड़े मछलियों की ताक में रहता है, उसी प्रकार सन्त लोग शास्त्रसागर में असार अल्पसार को छोड़कर सारतम जो भगवत् भक्ति है उसे ग्रहण करते हैं। जैसे बगुला समुद्र में बड़ी-बड़ी लहरें देखकर भी उड़ता नहीं है, उसी प्रकार सन्त महात्मा संसार-सागर के सुख-दुःख रूपी तरंगों की परवाह न करते हुये अपनी भगवन्निष्ठा में स्थिर रहते हैं।

सच्चे सन्त वे ही हैं जो दूसरों के दुःख को देखकर दुःखी होते हैं। सन्त दयालु स्वभाव के होते हैं। सन्त दूसरे के दुःख से दुःखी और दूसरे के सुख से सुखी रहते हैं। दयालु उसे कहते हैं, जो दुःखी मानव के दुःख को देखकर स्वयं कम्पित हो जाय। कुछ लोग सन्त हृदय को नवनीत से तुलना करते हैं, जो उचित नहीं है। गोस्वामी जी ने भी कहा है—**'पर दुःख द्रवहिं सो सन्त पुनीता'** अर्थात् सन्त अपने दुःख से दुःखीन होकर दूसरे के दुःख से दुःखी होता है। सन्त का हृदय कपास के समान कोमल होता है, वे किसी का अपकार नहीं करते हैं। जिस प्रकार कपास स्वयं अतिशय कष्ट सहकर भी दूसरे को आवृत्त कर सुसज्जित करता है, उसी प्रकार सन्त स्वयं अपने शरीर को विभिन्न प्रकार से तपाकर समाज के कल्याण में स्वयं को समर्पित करते हैं। सच्चे सन्त बाहर और भीतर से समान होते हैं। वे सर्वत्र परम तत्त्व का दर्शन करते हैं।

भगवान ने कहा है कि जिन सन्तों का मन मुझ में आवद्ध है, मैं उनके वश में हो जाता हूँ। वैसे सन्त मेरे हृदय हैं और मैं उन सन्तों का हृदय हूँ।

**साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयत्वहम्।**
**मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनादपि।।**

❑

# परतत्त्व एवं श्रीवैष्णव धर्म

उपासना का दो उद्देश्य है लौकिक फल एवं पारलौकिक फल की प्राप्ति। लौकिक फल में धन, पद, स्त्री-पुत्र आदि नश्वर पदार्थ हैं; परन्तु मानव जन्मान्तरीय वासनावश लौकिक वस्तुओं की ओर विशेष आकृष्ट होता है। यद्यपि यह सभी जानते हैं कि इन लौकिक फलों के सम्बन्ध से हमारा जीवन सुखमय होना सम्भव नहीं है, जैसा अभी देखने या सुनने में आ रहा है। पुत्र धनादि कुछ काल तक सुखद रहते हैं बाद में सब दुःखद ही हो जाते हैं। शरीर की नश्वरता सुनिश्चित है तथापि पूर्व वासनावश उससे सम्बन्ध हटाने की शक्ति लोगों में नहीं रह गयी है। उन लौकिक फलों की प्राप्ति के लिए लोग अनेक देवी देवताओं की उपासना करते हैं। दूसरा उद्देश्य है पारलौकिक फल। उसके लिए परतत्त्व का ज्ञान आवश्यक है; क्योंकि पारलौकिक फल मोक्ष है, जो दिव्यलोक में भगवत् सेवारूप है, जो आलवारों, पूर्वाचार्यों, जटायु तथा शबरी आदि को प्राप्त हुआ। उस फल को देने का सामर्थ्य एक मात्र भगवान विष्णु में है।

भवगवान विष्णु ही जगत् के सृजन, पालन एवं संहारक शक्ति से सम्पन्न हैं। जीवों को मोक्ष वे ही देते हैं। वे वेदों एवं पुराणादि शास्त्रों में नारायण नाम से प्रसिद्ध हैं। महाप्रलय काल में एक नारायण ही व्यवस्थित रहते हैं। अन्य ब्रह्मा से कीटाणु पर्यन्त समस्त जीव और जड़ (प्रकृति) सूक्ष्म रूप में (नाम रूप से रहित होकर) नारायण के अन्दर रहते हैं। सृष्टि से पूर्व भगवान विष्णु का सङ्कल्प होने पर उनकी नाभि से ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं। नारायण उन्हें समस्त वेदों का ज्ञान कराकर उनसे ही सृष्टि का विस्तार कराते हैं। वे ही नारायण श्रीवैष्णव धर्म की शिक्षा देते हैं। वेद प्रतिपाद्य तथा नारायण से प्रवर्तित श्रीवैष्णव धर्म के विरुद्ध आचरण करने वाले दानवों से जब-जब पृथिवी आक्रान्त हुई है तब-तब भगवान विष्णु मानव शरीर धारण कर दानवों का संहार एवं वैदिक सनातन श्रीवैष्ण धर्म को प्रतिष्ठापित किए हैं। हिरण्याक्ष, रावण, कंस आदि का संहार विष्णु के अतिरिक्त अन्य ब्रह्मादि देवों ने नहीं किया। सभी देवों ने क्षीरशायी भगवान विष्णु से ही रावण कंसादि के वध के लिए प्रार्थना की है, इसमें सभी शास्त्र साक्षी हैं।

नारायण से प्रवर्तित श्रीवैष्णव धर्म का प्रचार-प्रसार त्रेता में भगवान राम के द्वारा और द्वापर में भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा हुआ है। कलियुग में भगवान नारायण ने सनातन वैदिक श्रीवैष्णव धर्म के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान हम सभी को कराने के लिए वैकुण्ठ से अपने शेष जी को भेजा, जो भूतल पर श्रीरामानुज नाम से प्रसिद्ध हुये।

शेषावतार श्रीरामानुजाचार्य ने उपनिषद्, गीता और ब्रह्मसूत्रों का भाष्य किया। उन्होंने बतलाया कि तत्त्व तीन हैं–जड़, चेतन और ईश्वर। जिसमें चेतना नहीं हो उसे जड़ (प्रकृति) कहते हैं, माया भी इसी को कहते हैं। इसका आठ भेद है–पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहङ्कार।

चेतन का अर्थ है जिसमें ज्ञान हो उसे चेतन कहते हैं। जीवात्मा चेतन है।

ईश्वर शब्द से परम ब्रह्म नारायण जाने जाते हैं। जीवात्मा अणु, नित्य, अव्यक्त, अचिन्त्य, निर्विकार और नारायण का दास है। प्रतिशरीर में जीवात्मा भिन्न-भिन्न है, अत: अनन्त है। **अनन्ताः वै जीवाः** ।

जड़ व्यक्त, चिन्त्य और विकारी है। इसमें प्रति क्षण परिणाम होता रहता है। महाप्रलय काल में भी प्रकृति का नाश नहीं होता है। यह प्रलय काल में

नाम रूप से अयोग्य होने से सूक्ष्म रूप में रहती है। सृष्टि अवस्था में नाम रूप के योग्य होने से स्थूल रूप में रहती है।

भगवदुपासाना तथा मोक्ष के लिए वैष्णवी दीक्षा आवश्यक है। वैष्णवी दीक्षा के विना मानव मोक्ष एवं भगवदुपासना का अधिकारी नहीं होता है। वैष्णवी दीक्षा के समय पञ्च संस्कार किये जाते हैं। वेदों, संहिताओं एवं पुराणों में पञ्चसंस्कार की विधियाँ सविस्तार बतलायी गयी है। पञ्चसंस्कार के समय गुरु के द्वारा प्राप्त वैदिक अष्टाक्षरादि मन्त्रों के जप से सिद्धि प्राप्त होती है।

वैष्णवी दीक्षा में विशेषरूप से निर्देश किया गया है जो निम्नाङ्कित है—

* श्रीविष्णु भगवान के दिव्य अर्चाविग्रह में पाषाण बुद्धि न करें।
* सद्‌गुरुजनों को सामान्य मनुष्य न समझें।
* श्रीवैष्णव जनों में जातीयता का भाव न रखें।
* श्रीविष्णु भवगवान के चरणामृत तथा भागवतों के श्रीपाद तीर्थ को सामान्य जल न समझें।
* समस्त पापों को दूर करने वाले वेद-वेदान्त सिद्ध अष्टाक्षरादि मन्त्रों को सामान्य शब्द न समझें।
* श्रीलक्ष्मी-नारायण भगवान को अन्य देवताओं के तुल्य न समझें।
* वैष्णव धर्म में भागवतों का स्थान अधिक श्रेष्ठ माना गया है। भागवतों का अपमान भगवान के अपमान से बढ़कर माना गया है। भगवान को भागवतापचार किसी भी प्रकार से सह्य नहीं है।
* श्रीविष्णु भगवान के चरणामृत से भी बढ़कर श्रीवैष्णव भागवतों का श्रीपाद तीर्थ अधिक श्रेष्ठ माना गया है। इसलिए श्रीवैष्णव सन्त महानुभावों का समाराधन करना चाहिये। कहा गया है कि—**'सर्वेषामाराधनानां तदीयाराधनं परम्'** इति।

❑

---

अनन्तश्री विभूषित स्वामी पराङ्कुशाचार्य जी महाराज द्वारा रचित दिव्य प्रबन्धों, सरौती, हुलासगंज तथा श्रीवैष्णव सम्प्रदाय से सम्बन्धित विषय की जानकारी बेवसाईट पर उपलब्ध है—

# www.myswamyjee.in

**fHkfÙkfo p kj**

ft l edku oS:nf{k.k dh vkj fHkfÙk ;k ?kj u gks vkSv U; rhu fn'kkv ksea?kj gks nl edku esa jgus i j /u dkuk'k gksk gSA ft l edku oS:i f'pe vkj fHkfÙk ;k ?kj dkv Hkko gks vkS v U; fn'kkv ksea nhokj gks ml edku esa jgus okys oS:i e+dkukk ,oa'kk+q kdh of¼ gksh gSA ft l edku esa nfÙk ;k i wjc nhokj ,oa ?kj u gks ml edku esa okl djus okyks dh gkfu ugha gksh gSA vr% nf{k.k l s gh edku cukuk i z'kLr dj i f'pe] mÙkj rFkk i wjc dh vkj edku cuk,sA

# शरणागति से कष्ट निवारण

सर्वज्ञ होने के कारण भगवान हम जीवों के प्रत्येक अपराध को जानते हैं। वे सर्वशक्तिमान होने के कारण हमारे प्रत्येक अपराध के लिए दण्ड देने में भी समर्थ हैं। हम लोग अनादि काल से उनकी आज्ञा का उलङ्घन करते आये हैं, ऐसी स्थिति में हम लोगों पर भगवान कैसे प्रसन्न होंगे? इस दृष्टि से हम शास्त्र का अवलोकन करते हैं तो शास्त्रों में निष्काम कर्म, ज्ञान और भक्ति ये तीन भगवान को प्रसन्न करने के साधन मिलते हैं; परन्तु ये तीनों साधन कठिन हैं। कर्म-फल का त्याग ही निष्काम है। अनादि काल की वासना से जीव को सकाम कर्म, ही प्रिय लगता है। ज्ञान योग में मन सहित समस्त इन्द्रियों को वश में करने की आवश्यकता होती है। जन्मान्तरीय भोग वासना वश इन्द्रियों पर नियन्त्रण कठिन है। पाप को दूर किये बिना भगवान के चरणों में निर्मल भक्ति भी नहीं बनती है। अत: भगवान को प्रसन्न करने के लिए मावन क्या करे?

उत्तर—भगवान शरणागति से शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं। शरणागति में लक्ष्मी जी पुरुषकार बनती हैं। भगवान से जीवों के अपराध को महालक्ष्मी जी क्षमा कराती हैं। भगवान भी परम प्रेयसी लक्ष्मी जी की इच्छा की उपेक्षा नहीं करते हैं। जैसे राजा रानी की सिफारिश करने पर रनिवास के सेवकों के भयङ्कर अपराधों को भी क्षमा कर देते हैं, उसी प्रकार भगवान महालक्ष्मी जी की सिफारिश पर जीवों के अपराध को शीघ्र क्षमा कर देते हैं। महालक्ष्मी जी की प्रेरणा से महान अपराधियों के अपराध पर भगवान ध्यान नहीं देते हैं। अत एव श्रीविष्णुसहस्रनाम में भगवान का एक नाम अविज्ञाता है, इसका भाव है कि भगवान आश्रितों के अपराधों को जानते हुये भी अनजान बन जाते हैं। भगवान जीवों को कर्मफल भोगाते हैं वह महाकर्म हो या क्षुद्र कर्म। दोनों का फल भोगना पड़ता है; परन्तु शरणागत हो जाने पर भगवान जीव द्वारा किये गये कर्मों का फल नहीं भोगाते हैं। अन्य साधन जीवन भर करने के लिए कहा है; परन्तु शरणागति एक ही बार कर लेने से सारे अपराध नष्ट हो जाते हैं। इसलिए भगवान श्रीराम ने **'सकृदेव प्रपन्नाय'** अर्थात् जो जीव एक बार मेरी शरणागति कर लेता है कि मैं आपका हूँ उसे मैं अभय प्रदान कर देता हूँ। जगत् में कोई महान अपराधी व्यक्ति जिसके प्रति अपराध किया हो उसके चरणों में गिर पड़ता है तो उस व्यक्ति का हृदय द्रवित हो जाता है और वह अपराधी के अपराध को क्षमा कर देता है। फिर जगत् के स्वामी भगवान का तो कहना ही क्या है। अत: कष्ट से मुक्ति के लिए एक मात्र उपाय भगवान की शरणागति है।

शरणागति के छ: अंग हैं—(१) भगवान की आज्ञा के अनुकूल चलना, (२) प्रतिकूल का परित्याग कर देना, (३) भगवान मेरी रक्षा अवश्य करेंगे, (४) भगवान मेरी रक्षा करने में पूर्ण समर्थ हैं ऐसा विश्वास रखना, (५) यह जीवात्मा परमात्मा का ही है और (६) मैं अपनी रक्षा करने में स्वयं असमर्थ हूँ इस तरह का विश्वासपूर्वक दीन बन जाना।

भगवान के साथ जीव का नौ प्रकार का सम्बन्ध है। पिता-पुत्र, रक्षक-रक्ष्य, शेषी-शेष, भर्त्ता-भार्य, ज्ञाता-ज्ञेय, आधार-आधेय, आत्मा-आत्मीय, स्वामी-सेवक और भोक्ता-भोग्य–ये नौ सम्बन्ध हैं। भगवान जीव के पिता, रक्षक, शेषी, भर्त्ता, ज्ञेय, आधार, आत्मा, स्वामी और भौक्ता हैं। जीवात्मा भगवान के पुत्र, रक्ष्य, शेष, भार्य, ज्ञाता, आधेय, आत्मीय, सेवक और भोग्य हैं। इनमें जीवात्मा को स्वामी सेवकभाव का सदा स्मरण रखना चाहिये। सेवक का अर्थ है–दास। मानव सदा अपने को भगवान का दास रूप में अनुभव करता रहे। जैसे पिता की सम्पत्ति में पुत्र का अधिकार प्राप्त है उसी प्रकार स्वामी भगवान की सेवा में दास का स्वाभाविक अधिकार है। जैसे राजा अपने पुत्र को अपने पद पर अभिषिक्त कर देता है, उसी प्रकार भगवान अपने सेवक को कैङ्कर्यरूप मोक्ष पर अभिषिक्त कर देते हैं। ❑

# भारतीय गरिमा की रक्षा

भारत के एक सती साध्वी नारी सीता का अपहरण कर रावण लङ्का ले गया। उस समस्या के समाधान में सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान जिन्हें सृष्टि-प्रलय करने की सामर्थ्य थी, वे कर्मठता एवं पारस्परिक सम्बन्ध की शिक्षा देने एवं भारतीय गरिमा की रक्षा के लिए सुग्रीव से मित्रता स्थापित कर वानरी सेना के साथ समुद्र किनारे पहुँचे। वहाँ समुद्र की अगाधता को देखकर श्रीराम की चिन्ता बढ़ गयी। विभीषण ने सगर के पुत्रों के द्वारा प्रवृद्ध महासागर से मार्ग माँगने के लिए परामर्श दिया। उनके परामर्श के अनुसार भगवान श्रीराम ने कुशासन पर बैठकर धरना दे दी। उसका भाव था की समुद्र मेरे सामने उपस्थित होकर लङ्का जाने का मार्ग बता दे; परन्तु तीन दिनों तक समुद्र का अधिष्ठातृदेव भगवान श्रीराम के समक्ष उपस्थित नहीं हुआ। तदनन्तर समुद्र पर कुपित होकर उसे सूखा देने की भावना से श्रीराम ने धनुष पर दिव्यास्त्र का अनुसन्धान कर लिया। समुद्र उनके भावों को समझकर उनके समक्ष दिव्यरूप में उपस्थित हो गया और उनके चरणों में शरणागत होकर उसने कहा कि मेरी मर्यादा की रक्षा करना भी आपका पुनीत कर्त्तव्य होता है। मुझे सूखा देने पर मेरे अन्दर छिपे हुये रत्न सबों की दृष्टिपथ पर आ जायेंगे तथा मेरे अन्दर रहने वाले जलीय जन्तुओं का संहार हो जायेगा। अत: मैं उपाय बताता हूँ। आपकी सेना में विश्वकर्मा का पुत्र नल है, जिन्हें विश्वकर्मा ने वरदान देकर अपने समान शक्तिशाली बना दिया है। वे सेतु बनाने में पूर्ण समर्थ हैं। सेतु निर्माण के लिए जो भी मेरे अन्दर पाषाण या वृक्ष डाले जायेंगे मैं उन्हें डूबने नहीं दूँगा, उन्हें धारण करने का भार मैं अपने ऊपर लेता हूँ, आप जो अपने बाण को धनुष पर चढ़ा लिए हैं, उसे उत्तर दिशा में द्रुमकुल्य नामक एक नगर है जहाँ के लोग पापकर्म परायण हैं उन पर अपने बाण को सफल बना दें। एक बात यह भी शास्त्र सम्मत है कि बाल्यकाल में नल को एक महात्मा ने वरदान दिया था कि जिस पत्थर को स्पर्श करके तुम जल में डाल दोगे वह तैरता रहेगा, डूबेगा नहीं। अत: भगवान श्रीराम ने नल को सेतु निर्माण का भार दे दिया। करोड़ों भालू, वानर पाषाणों और वृक्षों को उखाड़-उखाड़ कर लाने लगे। नल पाषाण वृक्षों से सेतु निर्माण का कार्य प्रारम्भ कर दिये। नल के साथ सहयोगी लाखों वानर लगे हुये थे। एक सौ योजन लम्बा तथा दस योजन चौड़ा पुल बनाने का कार्य प्रारम्भ हुआ। प्रथम दिन चौदह (१४) योजन, द्वितीय दिन बीस (२०) योजन, तृतीय दिन इक्किस (२१) योजन, चतुर्थ दिन बाईस (२२) योजन एवं पञ्चम दिन तेईस (२३) योजन लम्बा सेतु का निर्माण हुआ। इस प्रकार सौ (१००) योजन लम्बा एवं दस (१०) योजन चौड़ा सेतु निर्माण का कार्य पाँच दिन में सम्पन्न कर दिया गया। इस पुल को देखने के लिए दिव्य ज्ञान सम्पन्न देवता तथा महर्षिगण आये। वे लोग पुल को देखकर आश्चर्यचकित हो गये। उन लोगों ने कहा कि यह अचिन्त्य अद्भुत और रोमाञ्चकारी कार्य हुआ है। जब महान पराक्रमी अद्भुत शक्तिमान देवताओं ने उस पुल को अचिन्त्य अद्भुत और रोमाञ्चकारी कहा जो नि:सीम शक्ति अपरिमित ज्ञान और बल से सम्पन्न वानरों द्वारा निर्मित था तब उस सेतु के सम्बन्ध में आज का परिमित शक्ति एवं ज्ञान, बल वाले वैज्ञानिक क्या और कैसे समझ पायेंगे? इस समय के मानव में यह कमजोरी है कि जब अपनी शक्ति से अतीत के कोई कार्य को समझने में असम्भव अनुभव करता है, तब वह उसे काल्पनिक कह देता है, ऐसा प्रतीत होता है। सेतु निर्माण कर भगवान श्रीराम वानरी सेना सहित लङ्का में प्रवेश कर गये। अद्भुत युद्ध हुआ।

युद्ध में समस्त राक्षस सहित राक्षसराज रावण का वध हो गया। तदनन्तर भगवान श्रीराम विभीषण को लङ्का का राजा बनाकर सीता-लक्ष्मण सहित अयोध्या लौट आये। अयोध्या में श्रीराम ने राजकाज का भार अपने हाथ में लेकर प्रजा का पालन करने लगे।

महर्षि व्यास जो विष्णु के अवतार हैं उनके द्वारा रचित पद्मपुराण के अनुसार एक दिन श्रीरामचन्द्र जी ने मन ही मन विचार किया कि राक्षस कुल में उत्पन्न विभीषण अपने राज्य का सञ्चालन कैसे कर रहे हैं? देवताओं के साथ कैसा व्यवहार करते हैं; एवं क्योंकि देवताओं की प्रार्थना पर ही मैंने रावण का वध किया था। तदनन्तर भगवान श्रीराम लङ्का जाने का निश्चय किये। भरत भी साथ में लङ्का जाने की अनुमति प्राप्त कर लिए। पुष्पक विमान आया, भगवान श्रीराम और भरत दोनों विमान पर बैठकर लङ्का के लिए प्रस्थान कर दिए। मार्ग में वानरराज सुग्रीव मिले, सुग्रीव ने श्रीराम एवं भरत का विधिवत् पूजन कर निवेदन किया कि मैं भी लङ्का चलूँगा। भगवान श्रीराम की आज्ञा से सुग्रीव भी साथ हो गये। इस प्रकार श्रीराम भरत एवं सुग्रीव के साथ पुष्पक विमान पर आरूढ़ होकर लङ्का चले गये।

राक्षसराज विभीषण को भगवान श्रीराम के लङ्का आने का समाचार मिला। विभीषण जी लङ्का को सुसज्जित करने का आदेश देकर मन्त्रियों के साथ भगवान श्रीराम के पास आये और साष्टाङ्ग प्रणाम कर बोले–कि आज मेरा जन्म सफल हो गया। मेरे सभी मनोरथ पूर्ण हो गये। उसके बाद विभीषण जी भरत एवं सुग्रीव से भी मिले। तत्पश्चात् विभीषण सबों को राजभवन में ले गये और रत्नों से जड़ित रावण के भवन में ठहराये। विभीषण ने समस्त परिवार के साथ अपने को भगवान श्रीराम के चरणों में अर्पित कर दिया। तदनन्तर राजा विभीषण का मन्त्रिमण्डल और लङ्का के निवासी भगवान श्रीराम का दर्शन किये।

भगवान श्रीराम ने राक्षसराज के भवन में तीन दिन तक निवास किया। चौथा दिन विभीषण की माँ कैकसी से श्रीराम स्वयं जाकर मिले। विभीषण की पत्नी महारानी सरमा ने कहा मैंने आप की प्रिया श्री जानकी जी को एक वर्ष तक अशोक वाटिका में सेवा की थी। तदनन्तर भगवान श्रीराम सबों को विदाकर विभीषण से बोले कि तुम सदा देवताओं का प्रिय कार्य करना, कभी उनका अपमान नहीं करना।

लङ्का से लौटते समय राक्षसराज विभीषण ने भगवान श्रीराम से निवेदन किया कि इस सेतु मार्ग से पृथ्वी के समस्त मानव लङ्का आकर मुझे सतायेंगे ऐसी परिस्थिति में मुझे क्या करना चाहिये? तब श्रीराम ने अपने बाण के फल से सेतु को ध्वस्त कर दिया जो आज भी समुद्र के अन्दर स्थित है।

वर्त्तमान काल में भी 'नासा' के वैज्ञानिकों द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि श्रीराम के द्वारा बनाया गया और तोड़ा गया पुल का अवशेष समुद्र के अन्दर प्राप्त है। 'सेतु समुद्रम्' परियोजना के पक्ष एवं विपक्ष में मत मतान्तर होने के बावजूद यह सिद्ध है कि पुल का अवशेष निश्चित रूप में है। अज्ञानवश परिमित ज्ञानवाले वैज्ञानिक इसे प्रकृति निर्मित कहते हैं चूँकि भगवान् श्रीराम का काल त्रेता युग था आज कलियुग है। अन्तराल बहुत ज्यादा हो गया है। अधिक समय व्यतीत होने के कारण तथा हठधर्मिता, अज्ञानता एवं राजनीतिक लाभ के कारण 'सेतु' को राम के द्वारा निर्मित स्वीकार नहीं किया जा रहा है।

भारतवर्ष से यदि श्रीराम एवं श्रीकृष्ण अलग कर दिये जायें तो भारत निर्जीव हो जायेगा और इसकी सारी संरचनायें ध्वस्त हो जायेंगी। वेद एवं पुराणों में प्रतिपादित विषयों की उपेक्षा हम भारतवासी किसी भी परिस्थिति में नहीं कर सकते हैं; क्योंकि भूत-भविष्य के द्रष्टा हमारे महर्षि थे और उनका कथन मुझे सर्वथा मान्य है।

❑

# हनुमान की अलौकिक भक्ति एवं विद्वता

सत्यपराक्रमी भगवान श्रीराम-लक्षण के साथ सीता की खोज में ऋष्यमूक पर्वत के पास भ्रमण कर रहे थे। उन दोनों पर सुग्रीव की दृष्टि पड़ी। वह वाली के भय से चिन्तित रहता था। उसको शङ्का हो गयी कि ऋष्यमूक पर्वत के पास धनुष बाणादि आयुधों को लेकर घुमने वाले वीर वाली के द्वारा प्रेषित ज्ञात हो रहे हैं। अत: उसने अपने मन्त्री हनुमान से कहा कि तुम वानर रूप त्यागकर मानव रूप में उन दोनों वीरों के पास जाकर उनका परिचय प्राप्त करो। अगर मेरी हत्या की भावना से वे दोनों घुम रहे होंगे तब मैं इस पर्वत को त्यागकर अन्यत्र चला जाऊँगा। हनुमान जी सुग्रीव के आदेशानुसार वानर रूप त्यागकर भिक्षुरूप में श्रीराम के पास गये। भिक्षुरूप का दो अर्थ लोगों ने किया है—(१) नैष्ठिक ब्रह्मचारी का रूप, (२) संन्यासी का रूप। इस प्रकार हनुमान जी ने अपने वास्तविक रूप छिपाकर श्रीराम का दर्शन किया। श्रीराम के अलौकिक स्वरूप के दर्शन मात्र से हनुमान जी को ज्ञान हो गया कि श्रीराम जगत् के स्रष्टा पालक एवं संहारक शक्ति सम्पन्न हैं। ये सबके हृदय में रहने वाले तथा सबके प्रेरक परम स्वतन्त्र भगवान नारायण हैं। अत: उन्होंने भगवान श्रीराम के चरणों में साष्टाङ्ग प्रणाम किया। अत एव वाल्मीकि ने लिखा है—**'विनीतवदुपागम्य राघवौ प्रणिपत्य च'**

अर्थात् विनीत भाव से हनुमान जी ने दोनों रघुवंशी वीरों के शरणागत हो गये। तदनन्तर उन्होंने दोनों भाईयों की प्रशंसा करके उनका विधिवत् पूजन किया और पूछा की आप सत्य पराक्रमी राजर्षियों और देवताओं के समान प्रभावशाली तपस्वी तथा कठोर व्रत पालन करने वाले ज्ञात हो रहे हैं। आप दोनों के अङ्गों की कान्ति सुवर्ण के समान प्रकाशित हो रही है। आपकी भुजायें विशाल हैं। आप जटा चीर-वल्कल धारण किये हुये हैं। आप क्या देवलोक से आये हैं? आप दोनों सूर्य चन्द्रमा ही तो नहीं हैं? आपके रूप देवताओं के तुल्य हैं, आप की भुजायें विशाल और सुन्दर हैं। आप राज्य भोगने योग्य हैं। आपने अपने समस्त भुजाओं को आभूषणों से विभूषित क्यों नहीं किया?

**आयताश्च सुव्रताश्च बाहवः परिघोपमाः ।**
**सर्वभूषणभूषार्हाः किमर्थं न विभूषिताः ।।** (४.३.१५)

इस श्लोक में हनुमान जी ने 'बाहवः' शब्द का

प्रयोग किया है जबकि श्रीराम की दो भुजायें थीं। संस्कृत में एक के लिए एकवचन, दो के लिए द्विवचन और बहुत के लिए बहुवचन का प्रयोग होता है, परन्तु हनुमान जी ने दो भुजाओं के लिए बहुवचनान्त 'बाहवः' का प्रयोग किया है। इसका तीन भाव है—(१) 'रामस्य दक्षिणो बाहुः' वाल्मीकि वचन के अनुसार लक्ष्मण श्रीराम के दक्षिण बाहु कहे गये हैं। इस प्रकार दोनों भाईयों को मिलाकर चार भुजायें हो जाती हैं। इसी दृष्टिकोण से हनुमान जी ने 'बाहवः' बहुवचनान्त का प्रयोग किया है। (२) हनुमान जी भगवान के भक्त हैं। श्रीराम विष्णु के अवतार हैं। अतः भक्त प्रेमवश श्रीराम ने चतुर्भुज रूप में हनुमान को दर्शन दिया है। (३) श्रीराम के दोनों बाहु विशेष बड़े होने से चार बाहु के बराबर प्रतीत हो रहे थे। इसलिए भी बहुवचन 'बाहवः' का प्रयोग किया है। हनुमान जी ने उसी श्लोक में पूछा है कि 'सर्वभूषणभूषार्हाः किमर्थं न विभूषिताः' अर्थात् सभी भूषणों को विभूषित करने वाली आपकी भुजायें हैं। आप इन भुजाओं में भूषणों को धारण कर इन्हें प्रकाशित क्यों नहीं किया? हनुमान जी के इस प्रश्न का भाव भूषण टीकाकार श्रीगोविन्दराज जी ने पाँच प्रकार से बतालाया है—

(१) लोगों के दृष्टि दोष से बचने के लिए इन भुजाओं को भूषणों से क्यों नहीं आच्छादित किया?

(२) भूषणों से आच्छादित सौन्दर्य ही हम सभी को वश में करने में समर्थ है फिर निरावरण सौन्दर्य का प्रदर्शन आपने क्यों किया?

(३) जैसे राजकुमारों के मुख ताम्बूल के बिना क्षण मात्र में मलिन हो जाते हैं, वैसे ही क्षण मात्र भी वियोग सहने में असमर्थ भूषणों का इन भुजाओं से वियोग क्यों करा दिया?

(४) भूषण रहित इन भुजाओं से किस शत्रु का समूल नाश करने का आपने सङ्कल्प लिया है?

(५) दिव्यधाम में विराजमान पार्षदों को छोड़कर चार रूप में अवतार लेने का क्या प्रयोजन है?

हनुमान जी भगवान श्रीराम के इस भूतल पर आने का कारण पूछने में समस्त वेदों में जिन विशेषणों से ब्रह्म स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है, उन विशेषणों का प्रयोग किया है। उन्होंने श्रीराम और लक्ष्मण के बिना पूछे ही अपना तथा सुग्रीव का परिचय दिया। हनुमान जी ने यह भी कहा कि मैं सुग्रीव का मन्त्री हूँ, हनुमान मेरा नाम है, मैं वानर जाती का हूँ। सुग्रीव के आदेशानुसार मैं वानर रूप त्यागकर मावनरूप में आपके पास आया हूँ। हनुमान ने कहा कि मैं बार-बार आपसे पूछ रहा हूँ; परन्तु आप उत्तर क्यों नहीं देते?

भगवान राम हनुमान जी के वचन से समझ गये कि यह सुग्रीव का मन्त्री है। राजनीतिशास्त्र के अनुसार राजा को मन्त्री से बात नहीं करनी चाहिये। अतः उन्होंने अपने मन्त्री लक्ष्मण से कहा कि तुम ही हनुमान के प्रश्नों का उत्तर दो।

जीवों का कल्याण आचार्य के बिना नहीं होता है। आचार्य ही जीवों को ब्रह्म से मिलाते हैं। सुग्रीव को भगवान श्रीराम से मिलाने में हनुमान जी आचार्य का काम कर रहे हैं। आचार्य का लक्षण शास्त्रों में इस प्रकार कहा गया है—जिसे वेदों का पूर्ण ज्ञान हो। जो विष्णु का भक्त हो। जिसमें मात्सर्य नहीं हो। जिसे मन्त्र का ज्ञान हो तथा जो मन्त्र में विश्वास करता हो। जिसे अपने गुरु में भक्ति हो तथा पुराणों का ज्ञान हो। ये सभी गुण हनुमान जी में थे। अतः श्रीराम ने हनुमान के गुणों का वर्णन करते हुये लक्ष्मण से कहा–हे लक्ष्मण! जिसे ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद का ज्ञान नहीं होता है वह हनुमान के समान सुन्दर भाषा में वार्तालाप नहीं कर सकता। इनके वक्तव्य से स्पष्ट है कि इनमें सभी वेदों का पूर्ण ज्ञान है। इन्होंने सम्पूर्ण व्याकरण का अनेकों बार स्वाध्याय किया है। तदनन्तर लक्ष्मण जी ने अपने दोनों भाईयों का परिचय दिया।

❑

# सीताजी स्वेच्छा से लङ्का गयी थीं

सीता हरण का प्रसङ्ग लोगों के मस्तिस्क में विभिन्न प्रकार की शङ्का उत्पन्न कर देती है। प्रथम सीता एक सामान्य नारी नहीं हैं, अपितु भगवान श्रीराम की अर्धाङ्गिनी लक्ष्मीस्वरूपा हैं। उनकी शक्ति अपरिमित है। वे कर्तुं अकर्तुम् अन्यथा कर्तुं समर्थ हैं। संसार की उत्पत्ति संहारादि समस्त कार्यों में भगवान श्रीराम के साथ रहने वाली हैं। सीता का अपहरण करना रावण की शक्ति से परे है फिर भी सीता महारानी के अपहरण का क्या रहस्य है? इसके सम्बन्ध में दाक्षिणात्य सन्तों ने वाल्मीकि रामायण के वचनों को उद्धृत करते हुये सिद्ध किया है कि सीता स्वेच्छा से लङ्का में गयी हैं।

सीता जी लक्ष्मी के अवतार हैं—'सीता लक्ष्मीर्भवान् विष्णु:' ऐसा उत्तर काण्ड में ब्रह्मा ने भगवान श्रीराम से कहा है। **'राघवत्वेऽभवत् सीता रुक्मिणी कृष्ण जन्मनि'** (विष्णुपुराण)। अर्थात् जब भगवान राघव नाम से प्रसिद्ध हुये तब लक्ष्मी सीता नाम से प्रसिद्ध हुईं और कृष्ण जन्म में लक्ष्मी रुक्मिणी बनीं। उसी सीता के लिए समर में मूर्च्छित लक्ष्मण को रावण नहीं उठा सका, फिर वह रावण सीता को बलात् लङ्का में कैसे ले गया?

**उत्तर**—पूर्व जन्म में लक्ष्मी कुशध्वज की वाङ्मयी कन्या के रूप में प्रकट हुई थी, उनका नाम 'वेदवती' था। उसे भी लङ्का ले जाने के लिए रावण ने प्रयास किया था। उस समय वेदवती ने रावण से कहा था कि पुन: मैं तुम्हें नाश करने के लिए धर्मात्मा जितेन्द्र राजा की अयोनिजा कन्या के रूप में प्रकट होऊँगी। वही वेदवती जनकपुर में राजा जनक के द्वारा यज्ञभूमि शोधनार्थ हल चलाते समय पृथ्वी से उत्पन्न हो गयी, जो सीता नाम से प्रसिद्ध हुई।

अनेक प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध है कि सीता ने स्वेच्छया देवकार्य के लिए स्वहरण को स्वीकार किया है। जैसे कूप में पतित सन्तान के लिए वात्सल्यादि गुणों के कारण माता कूप में कूद पड़ती है, वैसे ही रावण के द्वारा वन्दीकृत देवस्त्री रक्षण के लिए तथा रावण के उद्धार के लिए सीता जी स्वयं लङ्का में गयी हैं। जानकी ने रावण से जो बातें कही हैं उससे भी स्पष्ट हो जाता है कि वह जानकर अपनी ईच्छा से लङ्का गयी हैं। सीता ने लङ्का के रावण से कहा कि दशमुख रावण! मेरा नेत्र ही तुम्हें भस्म करने में समर्थ है, केवल भगवान श्रीराम की आज्ञा न होने से मैं तुम्हें भस्म नहीं कर रही हूँ। मैं बुद्धिमान श्रीराम की भार्या हूँ। मुझे हरण कर लङ्का लाने की शक्ति तुम्हारे अन्दर नहीं है। नि:सन्देह तेरे वध के लिए ही विधाता ने यह विधान रच दिया है।

**यस्मात् तु धर्षिता चाहं त्वया पापात्मना वने ।**
**तस्मात् तव वधार्थं हि समुत्पत्स्ये ह्यहं पुनः ।।**

यहाँ प्रश्न होता है कि जब सीता अपनी ईच्छा से रावण वध के लिए लङ्का में गयी हैं तब उसने वहाँ रोदन आदि द्वारा विलाप क्यों किया है?

**उत्तर**—भारवर्ष धर्म प्रधान देश है। यहाँ नारियों के लिए पातिव्रत्य धर्म श्रेष्ठ माना गया है। पतिव्रता नारी वह है जो अपने पति की अनवरत सेवा करती हुई अपने मन को किसी दूसरे पुरुष की ओर न ले जाये। करुणामयी सीता जी को रावण अपहरण कर लङ्का में ले गया। उसने सीता को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए अनेक उपाय किया; परन्तु उन्होंने एकक्षण के लिए भी राम को छोड़कर अपने मन को रावण की ओर नहीं जाने दिया। सीता जी ने रावण से बात भी की है तो तृण से अपने मुख को तिरोहित करके ही। पति के वियोग में नारी उसी प्रकार बेचैन हो जाती है जैसे जल से विलग होने पर मछली की स्थिति होती है।

**शेष पृ० १३ पर**

# सामान्य और विशेष धर्म

आध्यात्मिक जगत् में कभी-कभी विशेष समस्या उत्पन्न हो जाती है। धर्म दो प्रकार के हैं–सामान्य और विशेष। सत्य बोलना, माता-पिता की आज्ञा का पालन करना आदि सामान्य धर्म है और भगवान की आज्ञा के अनुसार चलना तथा उनका भजन करना ये विशेष धर्म है। यदि दोनों प्रकार के धर्म-पालन में कठिनाई न हो तो दोनों का पालन करे; परन्तु जब दोनों का पालन करना सम्भव न हो तो सामान्य धर्म को छोड़कर विशेष धर्म का ही पालन करे। वहाँ सामान्य धर्म का परित्याग दोषावह नहीं होता है। सामान्य धर्म को छोड़कर विशेष धर्म का पालन करने वाला अपराधी नहीं होता है।

(१) भगवान श्रीकृष्ण का मथुरा के कारागार में देवकी के गर्भ से प्रादुर्भाव हुआ था। जिस समय वसुदेव जी विवाह करके देवकी के साथ लौट रहे थे, राजा कंस ने उनके रथपर बैठकर घोड़ों का बाग पकड़ लिया और रथ हाँकने लगा। उस समय देवकी के गर्भ से जो अष्टम सन्तान होगी उससे तुम्हारी मृत्यु होगी ऐसी आकाशवाणी सुनने को मिली। कंस ने निर्णय लिया कि देवकी का वध कर मैं अपना मृत्युभय हटा दूँ। वसुदेव जी कंस को विश्वास दिलाये कि देवकी के गर्भ से जो सन्तानें देवकी के गर्भ से उत्पन्न होंगी उन्हें मैं आपको दे दूँगा। उन्होंने उत्पन्न क्रमशः छः पुत्रों को दे दिया। सप्तम में गर्भपात का प्रचार हुआ और अष्टम में जब भगवान श्रीकृष्ण का जन्म हुआ तब वसुदेव जी ने भगवान की आज्ञा से उन्हें गोकुल में पहुँचा दिया, उससे वसुदेव जी को असत्य का दोष नहीं लगा; क्योंकि उन्होंने भगवान श्रीकृष्ण की आज्ञारूप विशेष-धर्म को मानकर सत्य का परित्याग कर दिया था। इससे वसुदेव जी को लौकिक तथा पारलौकिक सुख की प्राप्ति में किसी प्रकार की बाधा नहीं आयी।

(२) वेद कहता है–**'पितृ देवो भव'** अर्थात् पिता देवता के समान पूज्य होते हैं; परन्तु प्रह्लाद के समक्ष यह समस्या उत्पन्न हो गयी कि पिता की आज्ञा मानकर भगवान विष्णु का भजन छोड़ दें अथवा आत्मकल्याण के लिए विष्णु का भजन करते रहें? उसने पिता की आज्ञा पालनरूप सामान्य धर्म को छोड़कर भगवान विष्णु का निरन्तर भजनरूप कार्य को अपनाया। जिसकी प्रतिक्रिया में प्रह्लाद के पिता हिरण्यकशिपु ने जगत् में वध करने योग्य समस्त उपायों से प्रह्लाद को मारने का प्रयास किया; परन्तु सर्वशक्तिमान सर्वज्ञ भक्तवत्सल भगवान विष्णु ने सब प्रकार से प्रह्लाद को बचा लिया। वह प्रह्लाद जगत् में भक्तशिरोमणि माना गया। सर्वत्र भक्तों के नाम में प्रह्लाद का प्रथम नाम आता है। सामान्य धर्म का त्याग करने के कारण किसी ने प्रह्लाद को अपराधी नहीं माना।

(३) **'मातृदेवो भव'** इस वैदिक वचन के अनुसार माँ की आज्ञा सर्वथा पालन करने योग्य है; परन्तु राजा दशरथ की मृत्यु के बाद भरत जी को अयोध्या की राजगद्दी पर बैठने के लिए उनकी माँ केकयी ने बार-बार आदेश दिया; किन्तु भरत जी ने माँ की आज्ञा का पालन करना सामान्य धर्म है और भगवान श्रीराम के चरणों की सेवा विशेष धर्म है ऐसा समझकर माँ की आज्ञा का उल्लङ्घन कर श्रीराम की चरणों में समर्पित हो गये। उन्होंने स्पष्ट कहा है—

**हित हमारी सियपति सेवकाई।**<br>
**सो हरिलिन्हीं मातु कुटिलाई।।**<br>
**मैं अनुमानी दिख मनमाहीं।**<br>
**आन उपाय मोर हित नाहीं।।**

भरत जी ने माँ केकयी के प्रति अनेक कटु शब्द का प्रयोग किया है। वे जब श्रीराम के चरणों में गये तो माँ केकयी की आज्ञा का उल्लङ्घनरूप दोष समझकर भी उन्होंने भरत की उपेक्षा नहीं की, प्रत्युत उन्हें हृदय में लगाकर कहा—

**मिटीहहिं पाप प्रपञ्च सब, अखिल अमङ्गल भार ।**
**लोक सुयश परलोक सुख, सुमिरत नाम तुम्हार ।।**

पूज्यपाद गोस्वामी जी ने अपना निर्णय दिया कि अगर जगत् में भरत का जन्म नहीं होता तो जीवों को राम के सम्मुख कौन करता?

**सियराम प्रेम पियूष पूरन होत जनम न भरत को ।**
**मुनिमन अगम जम नियम समदम विषम व्रत आचरत को ।।**
**दुखदाह दारिद्र दंभ दूषण सुजस मिस अपहरत को ।**
**कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को ।।**
**भरत चरित करि नेमु तुलसी जो सादर सुनहिं ।**
**सियराम पद पेमु अवसि होइ भव रस बिरति ।।**३२६।।

मातृ आज्ञापालनरूप सामान्य धर्म को छोड़कर भगवान श्रीराम की सेवारूप विशेष धर्म को अपना लेने के कारण जगत में भरत किसी प्रकार से दोषी नहीं माने गये।

(४) स्त्रियों के लिए पुरुष की आज्ञा का पालन सामान्य धर्म है और भगवान की चरणों में अपने को समर्पित कर देना विशेष धर्म है। जो नारी पति आज्ञापालनरूप धर्म को छोड़कर शुद्ध मन से भगवान में अर्पित हो जाती है, तो उसे पति की आज्ञा का उल्लङ्घनरूप दोष नहीं लगता है। जैसे मथुरा के चौबाईन को ग्वाल-बालों द्वारा यह ज्ञात हुआ कि भगवान श्रीकृष्ण और बलदेव जी गाय चराते हुये निकट आ गये हैं और वे भोजन के लिए अन्न माँग रहे हैं तो समस्त यज्ञपत्नियाँ अपने पति, श्वसुर की आज्ञा का उल्लङ्घन कर परात में उत्तम अन्न लेकर श्रीकृष्ण की सेवा में उपस्थित हो गयीं। प्रभु की आज्ञा से वे सब जब घर लौटीं तो उनके पति, श्वसुर आदि अपने को बार-बार धिक्कारते हुये कहने लगे कि ये धन्य हमलोगों की नारियाँ हैं जो भगवान कृष्ण एवं बलदेव को पहचान कर उनकी सेवा में समर्पित हो गयीं। उन लोगों ने अपनी पत्नियों को अपराधी नहीं समझा; क्योंकि वे सब सामान्य धर्म को छोड़कर विशेष धर्म को अपनायीं थीं।

(५) वलि की यज्ञशाला में भगवान वामन को उपस्थित देखकर वलि प्रसन्न हो गया। उसने पूछा कि मैं आपकी सेवा में क्या समर्पण करूँ? भगवान वामन ने कहा कि मुझे तीन पग भूमि चाहिये। उस समय वलि के गुरु शुक्राचार्य वहीं उपस्थित थे। वे समझ रहे थे कि यह वामन तीन पग भूमि के व्याज से हमारे शिष्य वलि का सर्वस्व हरण कर लेगा। अत: उन्होंने वलि को तीन पग भूमि देने से रोकने का प्रयास किया; परन्तु वलि शुक्राचार्य के वाक्य से समझ चुका था कि यह वामन साक्षात् विष्णु हैं। इसलिए वलि गुरु का आज्ञापानलरूप सामान्य धर्म को छोड़कर भगवान वामन के लिए तीन पग भूमि देने का सङ्कलप कर दिया। उसने गुरु आज्ञापालनरूप सामान्य धर्म को छोड़कर भगवान विष्णु का आज्ञा-पालनरूप विशेष धर्म को अपनाया। इसका परिणाम हुआ कि जगत् में वलि की विशेष ख्याति हुई। उस पर अधार्मिकता का आरोप किसी ने नहीं लगाया।

❑

---

**पृ० ११ का शेष**

भगवान श्रीराम के वियोग में पतिव्रता सती साध्वी सीताजी विलाप करके नारी समाज को शिक्षा दी है कि किसी प्रकार के लुभावे में आने पर भी अपने मन को पति से अलग नहीं होने देना चाहिए। यद्यपि वह लङ्का गयी हैं रावण को उपदेश करने के लिए, तथापि पति के वियोग में नारी की स्थिति कैसी होती है इसे दर्शाने के लिए वह विलाप की हैं।

सीता प्रलापादिकं किमर्थ कृतवतीति चेत् शृणु पति विरहे पतिवृतमैवं वर्तितन्यमिति लोकहित प्रवर्त्तनाय प्रलापादिकम् अकरोदिति (गोविन्दराज)। ❑

# श्रीराम ने छिपकर वाली को क्यों मारा?

तारा ने वाली से कहा था कि अयोध्या नरेश के दो पुत्र हैं वे बड़े शूरवीर हैं। उन्हें युद्ध में जीतना, अत्यन्त कठिन है। उनका जन्म इक्ष्वाकु कुल में हुआ है। वे श्रीराम और लक्ष्मण नाम से प्रसिद्ध हैं। वे पिता की आज्ञा से वन में आये हैं। सुग्रीव के प्रिय करने के लिए सङ्कल्प लिये हैं। वे शत्रु सेना का संहार करने में प्रलय कालिक प्रज्ज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी हैं। वे साधु पुरुषों के लिए आश्रयदाता कल्पवृक्ष हैं। सङ्कट में पड़े हुये सभी प्राणियों के लिए सहारा हैं। ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न तथा पिता की आज्ञा में स्थित रहने वाले हैं। जैसे हिमालय सभी धातुओं का खान है उसी प्रकार श्रीराम उत्तम गुणों के निधि हैं। उन महान पराक्रमी के साथ आपका विरोध करना कदापि उचित नहीं है।

वाली ने श्रीराम से कहा कि आप कुलीन, सत्वगुण सम्पन्न, तेजस्वी, उत्तम चरित्र का आचरण करने वाले करुणावेदी, प्रजा के हितैषी, दयालु, महान उत्साही, समयोचित कार्य एवं सदाचार के ज्ञाता तथा दृढ़प्रतिज्ञ हैं। मन का संयम, क्षमा, धर्म, धैर्य, सत्य, पराक्रम और अपराधियों को दण्ड देना ये सभी राजगुण आप में है।

**'त्वं राघवकुले जातो धर्मवानिति विश्रुतः'**। रघुकुल में आपका प्रादुर्भाव हुआ है। आप धर्मात्मा हैं। आप सर्वाधिक रूपवान हैं। आप पृथ्वी को सनाथित करने वाले हैं। आपके सभी सद्गुणों में विश्वास करके तारा के मना करने पर भी मैं नहीं माना। वाली श्रीराम को साक्षात् परमात्मा समझता था। अत एव १८वाँ सर्ग के ४५वाँ श्लोक की व्याख्या करते हुये श्रीगोविन्दराज जी ने कहा है कि श्रीराम के समक्ष उपस्थित होने पर वाली उनके प्रभाव को समझकर शरणागत हो जाता तब शरणागत होने पर श्रीराम वाली का वध कैसे करते? सुग्रीव के साथ श्रीराम की मित्रता हुई थी। उसका मुख्य उद्देश्य था वाली का वधकर सुग्रीव को किष्किन्धा का राजा बनाना। वाली के शरणागत हो जाने पर वाली वध कार्य नहीं होने से सुग्रीव के साथ की हुई प्रतिज्ञा व्यर्थ हो जाती। साथ ही वाली का मित्र रावण था। वाली के शरणागत हो जाने पर रावण भी शरणागत हो जाता। इससे देवताओं तथा ऋषियों के द्रोही रावणवध रूप कार्य नहीं होता। अतः श्रीराम ने वाली का सामने से वध न करके छिपकर किया।

ग्यारहवाँ सर्ग के ३९वाँ श्लोक की व्याख्या करते हुये गोविन्दराज जी ने यह भी कहा है कि इन्द्र ने वाली को एक सुवर्णमाला देकर कहा था कि इस माला को पहनकर युद्ध करने में माला के प्रभाव से विपक्षी का बल तुम में आ जायेगा। १७वाँ सर्ग के ४६वाँ श्लोक की व्याख्या करते हुये एक टीकाकार ने समाधान दिया है कि ब्रह्मा ने वाली को बुलाकर यह वरदान दिया था कि सम्मुख होकर लड़ने वाले का आधा बल तुम को प्राप्त हो जायेगा। इसलिए श्रीराम ने सम्मुख होकर वाली को बाण नहीं मारा। वाली वध का औचित्य भगवान श्रीराम ने बताया—

वाली ने श्रीराम से दो बातें पूछी हैं—(१) मुझ निरपराधी को आपने क्यों मारा? (२) अगर मुझे मारना ही उचित समझते थे तो छिपकर क्यों मारा?

प्रथम प्रश्न के समाधान में श्रीराम ने कहा कि तुम निरपराधी नहीं हो। बड़ा भाई, पिता और विद्यादाता (गुरु) ये तीनों पिता के तुल्य होते हैं। छोटा भाई, पुत्र और गुणवान शिष्य ये तीनों पुत्र के समान होते हैं। सज्जनों का धर्म सूक्ष्म होता है, उसे समझना अत्यन्त कठिन है। समस्त प्राणियों के अन्तःकरण में रहने वाले परमात्मा ही सबके शुभ और अशुभ को जानते हैं।

**सूक्ष्मः परमदुर्ज्ञेयः सतां धर्मः प्लवङ्गम ।**
**हृदिस्थः सर्वभूतानामात्मा वेद शुभाशुभम् ।।**

भगवान श्रीराम ने कहा वानर! तुम स्वयं चञ्चल हो और चञ्चल चित्त वाले वानरों के साथ रहते हो। अत: जैसे जन्मान्ध पुरुष जन्मान्धों से ही रास्ता पूछे, उसी प्रकार तुम उन चञ्चल वानरों से परामर्श करते हो। इसलिए तुम धर्म का विचार क्या कर सकते हो? मैंने तुम्हें क्यों मारा है? इसका कारण सुनो– तुम सनातन धर्म का त्याग करके अपने छोटे भाई की स्त्री से सहवास करते हो। सुग्रीव को जीवित रहते उसकी पत्नी रुमा का कामवश होकर उपभोग करते हो। वह रुमा तुम्हारी पुत्रवधू के समान है। अत: तुम पापाचारी हो। तुम अपने छोटे भाई की स्त्री रुमा को गले लगाते हो। इसी अपराध के कारण तुम्हें यह दण्ड दिया गया है। मैं क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुआ हूँ, अत: मैं तुम्हारे अपराध को क्षमा नहीं कर सकता। जो पुरुष अपनी कन्या, बहिन अथवा छोटे भाई की स्त्री के पास कामबुद्धि से जाता है, उस पाप के लिए उसका वध ही दण्ड माना गया है।

वाली का दूसरा प्रश्न है—**'त्वयादृश्येन तु रणे निहतोऽहं दुरासदः'**। आपने रणभूमि में दुर्जय वीर मुझ वाली को छिपकर क्यों मारा? भगवान ने कहा आखेट करने वाले राजा बड़े-बड़े जाल बिछाकर फँदे फैला देते हैं और गुप्त गढ्ढों में छिपकर मृगों को पकड़ लेते हैं। क्षत्रिय सावधान-असावधान अथवा विमुख होकर भागने वाले पशुओं को भी अत्यन्त घायल कर देते हैं। इस प्रकार के मृगया से वे दोषी नहीं होते। धर्मज्ञ राजर्षि भी जगत में मृगया के लिए जाते हैं और विविध जन्तुओं का वध करते हैं। इसलिए मैंने तुम्हें युद्ध में अपने बाण का निशाना बनाया है। तुम मुझसे युद्ध करने आया था या नहीं यह विचार करना आवश्यक नहीं है। तुम्हारी वधता में कोई अन्तर नहीं आता; क्योंकि तुम शाखामृग हो। मृगया करने वाले क्षत्रिय आगे पिछे छिपकर या प्रत्यक्ष किसी रूप में वध करें, उनका यह गुण ही माना गया है।

भगवान श्रीराम का उत्तर सुनकर वानर राज वाली ने हाथ जोड़कर उनसे कहा कि आपने जो कुछ कहा है वह सत्य है। मैं धर्मभ्रष्ट प्राणियों में अग्रगण्य हूँ, इस रूप में मेरी सर्वत्र प्रसिद्धि है। आज मैं आपके शरण में आया हूँ, आप मेरी रक्षा करें। मैं चाहता था कि आपके ही हाथों से मेरा वध हो। इसीलिए तारा के मना करने पर भी मैं अपने भाई सुग्रीव के साथ युद्ध करने आ गया। वाली की शरणागति से भगवान राम अत्यन्त प्रसन्न होकर उसका कल्याण कर दिये। अत एव रामचरितमानस के अनुसार वाली ने तारा से कहा था—

**कह वाली सुनु भीरु प्रिय, समदरसी रघुनाथ ।**
**जो कदाचि मोहि मारी हौं तो मैं होऊँ सनाथ ।।**

❑

आगामी वर्ष का नूतन—

**श्रीपराङ्कुश पञ्चाङ्गम्** **उपलब्ध है-**

**सरौती, हुलासगंज, मेहन्दिया, जहानाबाद, गया, औरंगाबाद, वाराणसी**

सम्पर्क-सूत्र-0-9450533293, 0-9415820493, 0542-2368687

ध्यातव्य : पञ्चाङ्ग दान करने वाले भक्तजन वाराणसी कार्यालय से सम्पर्क करें। उन्हें लागत मूल्य पर उपलब्ध कराया जायेगा।

# गोपियों के प्रेम से उद्धव की तन्मयता

उद्धव जी वृष्णिवंशियों में एक श्रेष्ठ पुरुष थे। वे वृहस्पति के परम बुद्धिमान शिष्य थे। उद्धव जी भगवान श्रीकृष्ण के सच्चे मित्र एवं मन्त्री भी थे। भगवान श्रीकृष्ण ने एक दिन अपने प्रिय सखा उद्धव जी का हाथ पकड़कर कहा कि आप ब्रज में जाईये। वहाँ मेरे पिता नन्द बाबा, माता यशोदा एवं गोपियाँ मेरे विरह में दुःखी हैं। उन्हें मेरा सन्देश सुनाकर आनन्दित कीजिए। गोपियों का मन निरन्तर मुझमें ही लगा रहता है। उनके प्राण, उनका जीवन तथा उनका सर्वस्व मैं ही हूँ। उन्होंने मेरे लिए अपने पति, पुत्र, सगे-सम्बन्धियों को भी छोड़ दिया है। वे गोपियाँ मेरा स्मरण कर मूर्च्छित हो जाती हैं। वृन्दावन से मथुरा आते समय मैंने उनसे कहा था कि मैं दो तीन दिन में वृन्दावन आ जाऊँगा। मैं ही उनकी आत्मा हूँ।

उद्धव जी भगवान श्रीकृष्ण के आदेशानुसार मथुरा से वृन्दावन गये। नन्दजी उद्धव जी को देखकर बहुत प्रसन्न हुये। उन्होंने उद्धव जी को गले लगाकर ऐसा अनुभव किया कि स्वयं श्रीकृष्ण ही आ गये हैं। उन्होंने उद्धव जी से पूछा कि श्रीकृष्ण कभी हमलोगों को याद करते हैं? यह यशोदा उनकी माँ है। यहाँ उनके स्वजन सम्बन्धी सखा, गोप, ब्रज, उनकी गायें, वृन्दावन और यह गिरिराज है, क्या वे इनका स्मरण करते हैं? इस प्रकार नन्द जी श्रीकृष्ण की एक-एक लीलाओं का स्मरण कर प्रेम विह्वल हो यगे। उनका गला रुन्ध गया।

जब गोपियों को यह ज्ञात हुआ कि उद्धव जी भगवान श्रीकृष्ण के दूत बनकर ब्रज में आये हैं तब वे उनसे भगवान श्रीकृष्ण के बचपन से लेकर किशोरावस्था तक जितनी लीलायें की थी, उन सभी को याद करके गोपियाँ उनका गान करने लगीं। वे आत्म-विस्मृत होकर स्त्रीलज्जा को भी भूल गईं और फूट-फूटकर रोने लगीं। तदनन्तर उन्होंने उद्धव जी से पूछा की क्या हम दासियों की भी कोई बात श्रीकृष्ण चलाते हैं? क्या हमारे जीवन में ऐसा भी शुभ अवसर आयेगा कि उनका दर्शन होगा?

गोपियों के वचन सुनकर उद्धवजी ने कहा कि तुम सब कृत-कृत्य हो। तुम्हारा जीवन सफल है। देवियों! तुम सारे संसार के लिए पूजनीय हो; क्योंकि तुमलोगों ने भगवान श्रीकृष्ण को अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया है। दान-व्रत-तप-होम-यश-वेदाध्ययन-ध्यान-धारणा-समाधि और कल्याण के अन्य साधनों के द्वारा भगवान की भक्ति प्राप्त हो वही यत्न किया जाता है। तुम लोगों ने पवित्र कीर्ति भगवान श्रीकृष्ण की सर्वोत्तम प्रेम भक्ति प्राप्त कर ली है, यह बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों के लिए भी अत्यन्त दुर्लभ है। यह सौभाग्य की बात है कि तुमने अपने पति-पुत्र, देह-स्वजन और घरों को छोड़कर पुरुषोत्तम भगवान श्रीकृष्ण को पति के रूप में वरण कर लिया है। तुम लोगों ने जो यह भाव मेरे सामने प्रकट किया, यह मेरे उपर तुम गोपियों की बड़ी दया है। मैं अपने स्वामी का गुप्त काम करने वाला दूत हूँ।

भगवान श्रीकृष्ण ने तुमलोगों को परमसुख देने के लिए यह प्रिय सन्देश भेजा है। उद्धव जी ने भगवान श्रीकृष्ण का सन्देश गोपियों को सुनाया। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि मैं सबों का उपादान कारण होने से सबकी आत्मा हूँ। तुम्हारा मुझसे कभी भी वियोग नहीं हो सकता है। जैसे संसार के सभी भौतिक पदार्थों में आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी ये पाँचों भूत व्याप्त हैं, उन्हीं से सब वस्तुयें बनी हैं। वैसे ही मैं मन-प्राण, पञ्चभूत इन्द्रियाँ और उनके विषयों का आश्रय हूँ। वे मुझमें हैं और मैं उनमें हूँ। सच पूछो तो मैं ही उनके रूप

**शेष पृ० १८ पर**

# गुरु-शिष्य संवाद

## पूँछ में लगी आग की ज्वाला से हनुमान कैसे बचे?

**शिष्य**—गुरुदेव! महावीर हनुमान जी सीताजी को पता लगाने के लिये लङ्का गये थे। वहाँ सीता का पता लगाकर वे लौट जाते, परन्तु प्रमदावन का विध्वंस, लङ्का का दहन आदि कार्यों को उन्होंने क्यों किया?

**गुरुजी**—जब हनुमान जी सीता के दर्शन करके वहाँ से लौटने लगे, तब उन्हें विचार आया कि मैं सीता का पता लगा लिया; परन्तु अभी तक शत्रु रावण की शक्ति का पता नहीं लगा। उसके लिये चार उपाय हैं–साम, दान, भेद और दण्ड। यहाँ साम आदि तीन उपायों को छोड़कर केवल चौथा उपाय दण्ड का प्रयोग ही सफल हो सकता है। जो व्यक्ति प्रधान कार्य के समान होने पर दूसरे आवश्यक कार्य को भी सिद्ध कर लेता है, वहीं व्यक्ति सुचारु रूप से स्वामी का कार्य सफल कर सकता है। इसलिए मैं इस यात्रा में शत्रु पक्ष के प्राबल्य और दौर्बल्य का निश्चय करके ही लङ्का से लौटूँ। एतदर्थ उन्होंने प्रमदावन को उजाड़ डाला। रावण के वीरों ने हनुमान जी को परास्त करने का प्रयास किया; परन्तु हनुमान ने उन सबों को मार डाला।

जब रावण को यह बात ज्ञात हो गयी कि प्रमदावन में आया हुआ एक वानर ने अक्षय सहित प्रेषित सेनाओं को मार डाला, तब उसने इन्द्रजीत (मेघनाद) को प्रमदावन में भेजा। उसने अन्य उपायों को निष्फल होते देखकर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। हनुमान जी दो बात सोचकर ब्रह्मास्त्र के बन्धन में पड़ गये—

(१) ब्रह्मा के अस्त्र से मुझे बाँधा है, इसकी महिमा की रक्षा मुझे करनी चाहिए।

(२) वे रावण को देखकर उसे शिक्षा देना चाहते थे; क्योंकि हनुमान जी आचार्य बनकर लङ्का में गये हैं। हनुमान जी सोच रहे हैं कि अगर रावण मेरे कहने पर श्रीराम की शरणागति कर लेगा, तो उसका भी कल्याण हो जायेगा।

ब्रह्मा से हनुमान जी को अभय दान मिल चुका था। इसलिए मेघनाद के द्वारा प्रयोग किया गया ब्रह्मास्त्र उन्हें देर तक बाँध नहीं सकता था। फिर भी रावण के पास पहुँचने की दृष्टि से हनुमान जी ने ब्रह्मास्त्र से मूर्च्छित होने का अभिनय किया। राक्षसों ने उन्हें बलपूर्वक पकड़कर घसिटते हुये राक्षस राज रावण के पास ले गये। रावण ने हनुमान जी से परिचय पूछा। उन्होंने सही परिचय रावण को बता दिया। निर्भीकता के साथ हनुमान के वचन सुनकर उन्हें वध के लिए रावण ने राक्षसों को आदेश दिया। श्रीविभीषण जी ने कहा कि दूत का वध करना नियम विरुद्ध है। किसी भी कुशल राजा का कर्त्तव्य होता है कि दूत का वध न करे। किसी दूसरे प्रकार का दण्ड दे। विभीषण का वचन रावण को प्रिय लगा। उसने हनुमान जी की पूँछ में आग लगा देने के लिए राक्षसों को आदेश दिया। राक्षसों ने हनुमान जी की पूँछ में कपड़ों को लपेटकर उस पर तेल डाल दिया और उसमें आग लगाकर प्रज्ज्वलित करा दिया। हनुमान जी की पूँछ से आग की ज्वालायें उठने लगीं। उन्होंने घुम-घुमकर लङ्का के सभी भवनों को जला डाला।

**शिष्य**—गुरुदेव! हनुमान जी की पूँछ से निकली अग्नि की ज्वालायें जब लङ्का को जला डाली तब हनुमान जी की पूँछे क्यों नहीं जली?

**गुरुजी**—हनुमान जी की पूँछ में जब आग लगायी जा रही थी उस समय भयङ्कर राक्षसियों ने सीता देवी के पास जाकर यह अप्रिय समाचार सुनाया। उसने कहा कि सीते! जिस लाल मुखवाले

बन्दर ने तुम्हारे साथ बात-चीत की थी, उसकी पूँछ में आग लगाकर राक्षस उसे सारे नगर में घूमा रहे हैं। राक्षसियों की बात सुनकर अपने हरण की तरह क्रूरतापूर्ण बात सुनकर विदेह नन्दिनी सीता शोक से सन्तप्त हो उठीं। वे मन ही मन अग्निदेव की उपासना करने लगीं। सीताजी हनुमान जी के लिए मङ्गलकामना करती हुई अग्निदेव की उपासना में चार बाते कहीं—

(१) हे अग्निदेव! यदि मैंने पति की सेवा की है और यदि कुछ भी तपस्या एवं पातिव्रत्य का बल मुझ में है तो तुम हनुमान के लिए शीतल हो जाओ।

(२) यदि भगवान श्रीराम के मन में किञ्चित् मात्र भी दया है अथवा मेरा सौभाग्य शेष है तो तुम हनुमान के लिए शीतल हो जाओ।

(३) यदि धर्मात्मा रघुनाथ जी मुझे सदाचार से सम्पन्न और अपने से मिलने के लिए उत्सुक मुझे समझते हैं, तो हनुमान जी के लिए शीतल हो जाओ।

(४) यदि सत्यप्रतिज्ञ आर्य सुग्रीव इस दुःख के महासागर से मेरा उद्धार कर सकेंगे तो तुम हनुमान के लिए शीतल हो जाओ।

इस प्रकार सीता महारानी के प्रार्थना करने पर तीखी लपटों वाले अग्निदेव हनुमान के मङ्गल की सूचना देते हुये शान्त भाव से जलने लगे। उनकी शिखा प्रदक्षिण भाव से उठने लगी। हनुमान के पिता वायुदेवता भी उसकी पूँछ में लगी आग को सौम्य करने के लिए बर्फीली हवा के समान शीतल और सीता देवी के लिए सुखद होकर बहने लगे। उस समय हनुमान जी अपनी पूँछ में लगी आग के सम्बन्ध में सोचने लगे कि यह आग सब ओर से प्रज्ज्वलित होने पर भी मुझे जलाती क्यों नहीं है। यह आग मुझे पीड़ा भी नहीं दे रही है। मालूम होता है कि मेरी पूँछ के अग्र भाग में बर्फ रख दिया गया है। समुद्र पार करते समय श्रीराम के प्रभाव ने आश्चर्य दिखाया था। उसी तरह आज अग्नि की शीतलता भी आश्चर्ययुक्त प्रकट हो रही है। हनुमान जी को यह निश्चय हो गया कि भगवती सीता की दया, रघुनाथ जी का तेज तथा मेरे पिता की मैत्री के प्रभाव से अग्निदेव मुझे जला नहीं रहे हैं।

**सीतायाश्चानृशंस्येन तेजसा राघवस्य च।**
**पितुश्च मम सख्येन न मां दहति पावकः ।।**

(सुन्दरकाण्ड ५३-३७)

❑

**पृ० १६ का शेष**

में प्रकट हूँ। मैं तुम्हारे जीवन का सर्वस्व हूँ, किन्तु मैं जो तुम से इतना दूर रहता हूँ इसका कारण है कि तुम निरन्तर मेरा ध्यान कर सको। शरीर से दूर रहने पर भी मन से तुम मेरे सान्निध्य का अनुभव करो। अपना मन मेरे पास रखो। दूर रहने पर जितना प्रेमी में मन लगा रहता है उतना आँखों के सामने रहने पर मन नहीं लगता है।

उद्धव जी ने जो श्रीकृष्ण का सन्देश सुनाया उसका भाव है कि श्रीकृष्ण ही सभी रूप में हैं, फिर उन्हें दूर समझकर तुमलोग व्यथित क्यों होती हो? परन्तु गोपियाँ भगवान श्रीकृष्ण का दिव्यस्वरूप एवं उनकी दिव्य लीलाओं में तन्मय हो रही थीं, इसलिए उद्धव जी के द्वारा लाया गया सन्देश उन्हें प्रिय नहीं लगा। उन गोपियों का श्रीकृष्ण के प्रति प्रगाढ़ प्रेम देखकर उद्धव जी को कहना पड़ा कि इस ब्रज में वृक्ष-लता आदि के रूप में भी मेरा जन्म होता तो इन गोपियों के चरणरज से मेरा जीवन सफल हो जाता।

**आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।**
**या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा भेजुः मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्।।**

(श्रीमद्भागवत–१०-४७-६१वाँ श्लोक)

❑

# यज्ञ का स्वरूप एवं लाभ

**—पं० श्री गोवर्धन धारी शर्मा**
ग्राम–कलेन, पो०-थाना–खुदवाँ
जिला–औरंगाबाद

**'त्रयो धर्मस्कन्धाः यज्ञोऽध्ययनं दानमिति'**। धर्म के तीन स्कन्ध हैं-यज्ञ, अध्ययन और दान। इन तीनों में सर्वप्रथम यज्ञ आता है। 'यजनं यज्ञ:' यज् धातु से नङ् प्रत्यय जोड़कर यज्ञ शब्द बनता है। यज्ञ विष्णु का स्वरूप है। 'यज्ञेन यज्ञ मयजन्त देवा:' यह देव-वाणी है। इस धरातल पर देव एवं ऋषिगण ज्योतिष्टोमादि यज्ञों द्वारा परम पुरुष नारायण की उपासना करते थे। भगवत् गीता के अनुसार यज्ञ के निमित्त किये जाने वाले कर्म भव बन्धन से छुड़ाते हैं और अपने लिए किये जाने वाले कर्म संसार के बन्धन में डालते हैं। 'यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धन:'। यज्ञातिरिक्त कर्म बन्धन कारक है।

यज्ञ समस्त सृष्टि का मूल है। यज्ञ से वर्षा होती है, वर्षा से अन्न होते हैं, अन्न से प्राणी की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार सृष्टि के सञ्चालन में यज्ञ प्रधान कारण है। शास्त्रों में पञ्चमहायज्ञ की चर्चा है—

(१) ब्रह्मयज्ञ—वेदों का पाठ करना ब्रह्मयज्ञ कहलाता है।

(२) पितृयज्ञ—पितरों के निमित्त तर्पण करना पितृयज्ञ है।

(३) देवयज्ञ—देवताओं के निमित्त हवन करना और भगवत् पूजन करना देवयज्ञ है।

(४) भूतयज्ञ—प्राणियों के निमित्त बलि देना भूत-यज्ञ है।

(५) नृयज्ञ—अतिथियों की सेवा करना नृयज्ञ है।

प्रतिदिन इन यज्ञों के अनुष्ठान से समस्त पापों का नाश हो जाता है और इन्हें नहीं करने से पाप सञ्चित हो जाते हैं, जो मानव कल्याण के लिए बाधक हैं।

भगवान ने प्रजाओं से कहा कि तुमलोग यज्ञ के द्वारा देवताओं की आराधना करो, देवता अन्नादि के द्वारा तुम्हारा पोषण करेंगे। इस प्रकार परस्पर तुम दोनों का कल्याण होगा। इसका भाव है कि आराधित देवों से प्राप्त अन्न, जलादि द्वारा निष्काम भाव से भगवान की उपासना करो। निष्काम भाव से की गयी उपासना अन्त:करण को निर्मल बनाती है, जिससे प्राणी मुक्ति को प्राप्त करता है।

**यज्ञानुष्ठान से लाभ—**

(१) यज्ञ से मनुष्य मोक्ष का अधिकारी बनता है।

(२) यज्ञ से कठिन कार्य सुलभ हो जाता है।

(३) यज्ञ से भगवान की सत्ता एवं सर्वव्यापकता में विश्वास बनता है।

(४) यज्ञ से मानव इन्द्रियों पर विजय पाता है।

(५) यज्ञ से आत्मा में शान्ति स्थापित होती है।

(६) यज्ञ से मानव माया बन्धन से मुक्त होकर भगवत् परायण हो जाता है।

(७) यज्ञ से मनुष्य की समस्त बाधायें दूर हो जाती हैं।

(८) यज्ञ से परमात्मा का साक्षात्कार होता है।

**शेष पृ० २४ पर**

# परकालसूरि चरित्र

दक्षिण भारत में एक अन्यून नाम की नगरी थी। वहाँ एक राजा राज्य करते थे। वे राजा महान पराक्रमी और धार्मिक थे। दो सौ सात (२०७) वर्ष कलि बीत जाने पर उन्हें एक पुत्र हुआ। वह भगवान के सारङ्ग धनुष के अंश से प्रादुर्भूत हुआ था। उसके शरीर का वर्ण नील था। अत: उस बालक का नाम 'नीलम्' पड़ा। वे ही नीलम् परकालसूरि के नाम से प्रसिद्ध हुए हैं। नीलम् अल्पकाल में ही शास्त्र और शस्त्र दोनों विद्याओं में प्रवीण हो गये थे। राज ने एक प्रदेश का भार नीलम् पर सौंप दिया। उसी क्षेत्र में नागपुर के पास एक तालाब था, उसमें निर्मल जल रहता था। वह कमलों से सुशोभित था। स्वर्ग से अप्सरायें प्रतिदिन उस तालाब में स्नान करने के लिए आती थीं और स्नान के बाद लौट जाती थीं। एक दिन किसी कारण वश एक अप्सरा को छोड़कर सभी अप्सरायें स्नान करके स्वर्ग चली गयीं। वह अप्सरा अपने देव शरीर को छोड़कर मानवी शरीर धारण कर ली और इधर-उधर विचरने लगी। नागपुर के एक अच्छे वैद्य वहाँ आ गये। उन्होंने उस बालिका से घुमने का कारण पूछा। बालिका ने कारण बताकर कही कि मैं अनाथ हूँ। आप मुझे अपने घर ले चलें।

श्री वैद्य जी ने कहा कि यदि तुम मेरे घर चलोगी तो मैं तुम्हें अपनी पुत्री समझकर पालन-पोषण करूँगा। वैद्य जी ने उसे अपने घर ले जाकर पत्नी को पुत्री की तरह उसकी सेवा करने का भार दे दिया। वैद्य ने उस कन्या का नाम कुमुदवली रखा। जब वह कन्या विवाह के योग्य हो गयी तब वैद्य को उसके विवाह की चिन्ता उसी प्रकार बन गयी जैसे सीता जी के विवाह के लिये राजा जनक को हुई थी। कुमुदवली अपरिमित सौन्दर्य सम्पन्न थी। एक विश्वासी दूत ने नीलम् के पास जाकर कुमुदवली के सौन्दर्य का वर्णन किया। नीलम् ने राज्य का भार दूसरे पर सौंपकर वैद्य राज के पास गया। उन्होंने वैद्य से पूछा कि आप सन्तान हीन हैं, फिर आपको यह कन्या कैसे प्राप्त हुई? वैद्य ने कुमुदवली की प्राप्ति सम्बन्धी सारी कथा नीलम् को बता दिया। नीलम् ने उस कुमुदवली के साथ विवाह का प्रस्ताव दिया। वैद्य ने अपनी कन्या कुमुदवली से पूछा। कुमुदवली ने कहा कि मैं अवैष्णव से विवाह नहीं करूँगी। जो तप्त शंख चक्र उर्ध्वपुण्ड्रतिलक, भगवान नाम, मूल, द्वय एवं चरममन्त्र और आत्मसमर्पण रूप याग इन पञ्च संस्कारों से संस्कृत हो, भगवान विष्णु के चरणों में प्रेम करते हों उन्हीं से विवाह करूँगी।

राजा नीलम् कुमुदवली की प्रतिज्ञा सुनकर श्रीनिवास स्थल आये और वहाँ के महात्मा श्रीपूर्णहरि जी से उन्होंने वैष्णवी दीक्षा ली। तदनन्तर वे ऊर्ध्वपुण्ड्रतिलक लगाकर कुमुदवली के पास आये। उन्हें देखकर कुमुदवली ने उनसे कहा कि यदि आप एक वर्ष तक प्रतिदिन १००८ श्रीवैष्णव का श्रीपाद तीर्थ लेकर उन्हें भोजन, दक्षिणा तथा ताम्बूल से सन्तुष्ट किया करें तो मैं आपकी पत्नी हो जाऊँगी, अन्यथा आपसे विवाह नहीं करूँगी। श्रीनीलम् जी कुमुदवली के इस शर्त को भी स्वीकार करके उसका पाणिग्रहण किया। कुमुदवली से की गयी प्रतिज्ञा के अनुसार श्रीनीलम् जी प्रतिदिन १००८ श्रीवैष्णवों का तीर्थपाद लेकर उन्हें भोजन, दक्षिणा, ताम्बूल आदि से सन्तुष्ट करने लगे। श्रीनीलम् जी श्रीवैष्णवों के उच्छिष्ट प्रसाद को ही ग्रहण करते थे। १००८ श्रीवैष्ण्व के तदीयाराधन कराने से श्रीनीलम् का सुयश सर्वत्र फैल गया।

चोल देश का राजा अविनादुदयार को यह ज्ञात हुआ कि यह सम्पूर्ण राज्य के धन को श्रीवैष्णवा

**शेष पृ० २२ पर**

# प्रभु की निर्हेतुक कृपा

परमपिता परमात्मा की कृपा दृष्टि एक अमूल्य वस्तु है। उनकी कृपा दृष्टि सदा मानवों के ऊपर होती रहती है। मानव स्वभाववसात् अपराध करते रहता है और परमात्मा अपने स्वभाववसात् कृपा करते रहते हैं। एक अपराध करने में मस्त तो दूसरे अपराध से त्राण देने में व्यस्त। विचित्र कर्म-बन्धन का विधान है। एक अपराध करके भोगने में व्यस्त और मस्त है तो दूसरे भोगाने में ही आनन्दित है। मानव अपना स्वभाव छोड़ने को तैयार नहीं है और परमात्मा भी अपना स्वभाव बदलने को तैयार नहीं। मानव भ्रम से या धोखा से भी परमात्मा को कभी स्मरण कर लेता है तो परमात्मा उसका भी कल्याण कर देते हैं। शास्त्रों में इसके सम्बन्ध में अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं। अत एव आगे लेख के माध्यम से उपलब्ध उदाहरणों को प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

शास्त्रकारों ने हिंसा को महान् पाप माना है। मनसा, वाचा, कर्मणा किसी भी प्रकार से हिंसा होती है, तो वह दोष का भाजक बन जाता है; परन्तु यदि कोई व्यक्ति भगवद् भागवत विरोधी का वध (सुकृत कर्म न मानकर) कर देता है तो वह पाप का भाजक नहीं होता। परमात्मा उसका कल्याण करते हैं।

कोई व्यक्ति किसी वेश्या में अनुरक्त रहता है। वह वेश्या नित्य भगवान् के मन्दिर में जाकर गान एवं नर्तन करती है। अनुरक्त व्यक्ति भी वेश्या के पीछे-पीछे मन्दिर तक नित्य पहुँच जाता है और भगवान् के दर्शन भी कर लेता है। मन्दिर जाना उस व्यक्ति का मुख्य प्रयोजन नहीं है। मुख्य प्रयोजन है वेश्या के पीछे-पीछे जाना; परन्तु वह न चाहते हुए भी भगवान् के दर्शन किया है। अत: उस अनुरक्त व्यक्ति का भी कल्याण होगा।

किसी कृषक के खेत में कोई गाय फसल चर रही है। कृषक मारने के लिए हाथ में डण्डा लेकर दौड़ता है। गाय मार के डर से भागती है और पास में ही विराजमान किसी भगवद् मन्दिर की परिक्रमा करने लगती है। गाय के पीछे-पीछे दौड़ने वाला कृषक भी गाय के साथ-साथ परिक्रमा करने लगता है। कृषक के मन में मन्दिर में परिक्रमा की बात थोड़ी सी भी नहीं जगी है; परन्तु परिक्रमा कर उसने सुकृत कर्म किया है। अत: उसका कल्याण होगा।

हम संसारी मानव अपने पुत्रों, पुत्रियों को दिव्य देशों में परिणय कराते हैं। साथ ही साथ हम सभी अपनी सन्तान से अथवा सम्बन्धियों से मिलने के लिए इधर-उधर जाते हैं और ऐसी बातें करते हैं कि 'मैं कल श्रीरङ्गम् जाऊँगा, मैं श्रीवेङ्कटाद्रि जाऊँगा, हमारी पुत्री श्रीकाँची में रहती है, हमारा पुत्र श्रीपादवाद्रि में निवास करता है' आदि। हमें दिव्य देशों का नामोच्चारण अथवा उनकी यात्रा करने का विल्कुल विचार नहीं रहता; तथापि लौकिक वार्तालाप अथवा कामकाजों के बीच में यह भी सुकृत कर्म करना पड़ता है, जिसका सुकृत फल हमें प्राप्त होता है।

कोई धनी व्यक्ति अपनी सेवा के लिए अनेक नौकर-चाकर रखता है। उनमें एक का नाम नारायण, दूसरे का गोविन्द और तीसरे का केशव है। धनी व्यक्ति उनको बुलाने की भावना से बार-बार पुकारता है—'केशव', 'नारायण', 'गोविन्द' आदि। यहाँ धनी व्यक्ति नामों का उच्चारण करके बार-बार अपने सेवकों को बुलाता है। भगवन्नामोच्चारण करने की उसकी चिन्ता नहीं है, परन्तु भगवन्नामोच्चारण होने के कारण उसका सुकृत होगा।

कितने ही भगवद् भक्त जन दिव्य देशों की यात्रा करते हैं। यात्रा क्रम में उन्हें निर्जन वन से गुजरना पड़ता है। रास्ते में दो-चार चोर मिल कर उन भक्तों को लूटने की राह देख रहे हैं। इतने में

एक शस्त्रधारी राजकर्मचारी उसी रास्ते से निकलता है, जिसे देखकर चोर समझते है कि यह तो इन यात्रियों की सुरक्षा करने के लिए आया है और वहाँ से चोर भाग जाते हैं। अर्थात् उसके निमित्त भक्तों की रक्षा हुई। उन भक्तों तथा कर्मचारी को इस रहस्य का पता भी नहीं लगा। वे अपने-अपने रास्ते चले गए; परन्तु सुकृत कर्म का फल कर्मचारियों को अवश्य प्राप्त होगा।

कोई धनिक जुआ खेलने या हवा खाने के उद्देश्य से अपने घर से बाहर विशाल व सुन्दर बंगला बनवाकर दिन भर और आधी रात तक अपने मित्रों के साथ उधर रहता है। आधी-रात के बाद कितने ही भक्तजन इधर-उधर दिव्यदेशों की यात्रा करते हुए उस गाँव में पहुँचकर उस बंगला में विश्राम कर लेते हैं। गृहस्वामी ने इनके लिए वह बंगला नहीं बनवाया था। उसे इस बात का पता भी नहीं चला कि मेरे बंगला में तीर्थयात्री लोग आराम करते हैं; परन्तु अचानक ही उन्हें बार-बार उक्त प्रकार से उनको सुविधा देने का अवकाश मिला। ऐसे और भी अनेक दृष्टान्त दिये जा सकते हैं, जहाँ कर्त्ता की इच्छा अथवा ज्ञान के बिना भी उससे सत्कर्म अनुष्ठित किये जाते हैं; परन्तु स्वभावत: दयामय और पापी चेतनों का अङ्गीकार करने की राह देखते रहने वाले भगवान् उनके उक्त कार्यों को ही पुण्य मानकर उन पर कृपा करते हैं।

इस प्रकार से हमारे एक जन्म में नहीं, अपितु अनेक जन्म परम्पराओं में अकस्मात् होने वाले दूसरे काम करने के प्रसङ्ग में होने वाले (प्रासङ्गिक), दूसरे काम के साथ किये जाने वाले (आनुसङ्गिक) पुण्यों को हमारे सिर पर लादकर, उनके निमित्त भगवान् हमारा उद्धार कर देते हैं।

❑

---

**पृ० २० का शेष**

की सेवा में व्यय कर रहा है, तब उसने श्रीनीलम् के पास अपने दूतों को भेजकर सूचित किया कि वह सारे धन को लौटा दे। जिस समय दूत श्रीनीलम् के पास आये उस समय वे श्रीवैष्णवों की सेवा में लगे हुये थे। अत: उन्होंने खजाना लौटाने में अपनी असमर्थता व्यक्त की। आये हुये दूत चार दिनों तक रह गये, परन्तु श्रीनीलम् ने खजाना नहीं लौटाया। तदनन्तर राजदूतों ने कड़ाई के साथ खजाने की माँग की। श्रीनीलम् ने उन्हें फटकारते हुये कहा कि तुमलोग जाओ खजाना नहीं दूँगा। राजदूतों ने लौटकर सब समाचार राजा को सुना दिया। उससे राजा असन्तुष्ट होकर श्रीनीलम् को पकड़ कर लाने के लिए छ: हजार दूतों को भेजा। उस समय श्रीनीलम् अपने अवतार स्थल से एक कोस की दूरी पर कुमुदवली के साथ उत्तम भोजनादि से श्रीवैष्णवों की सेवा कर रहे थे। राजा के दूत श्रीनीलम् को पकड़ने के लिए वैसे ही प्रयास करने लगे जैसे भक्त हनुमान को पकड़ने के लिए रावण के दूतों ने किया था। राजदूतों की धृष्टता देखकर श्रीनीलम् क्रोधपूर्वक हाथ में तलवार लेकर सबों के साथ लड़ने के लिए युद्ध स्थल में तैयार हो गये। उस समय श्रीनीलम् का स्वरूप वैसे ही देखने में लगता था जैसे मतवाले हाथियों को वीदीर्ण करने के लिए महान पराक्रमी सिंह आ गया हो।

श्रीनीलम् ने राजदूतों को मार भगाया  तदनन्तर राजा ने नीलम् को पकड़ने के लिए सात बार अपनीं विशाल सेना को भेजा; परन्तु उसे सफलता नहीं मिली। ❑

**(क्रमशः)**

# okLr&ijke'kZ

**}kj fopkj**

edku oQ ft/j (yEckbZ;k pkSM+kbZ esa) }kj j[kuk gks ml suk¶ cjkcj Hkkx dj nsaA ?kj I sckgj fudyus esa nkfguh vksj i M+us okys Hkkx vkSj ck;ha vksj rhu Hkkx NksM+dj chp oQ ,d Hkkx esa }kj cukuk pkfg,A I oZ&okLr ¼kkL=k½ esa ?kj I sfudyrs le; nkfguh vksj vf/d j[kus dk fo/ku gSA

oQN yksx okLr ¼kkL=k½ dk u&foghu gksus oQ dkj.k ;g dgdj turk dks Hkze esa Mkyrs jgrs gSa fd vf/d ydj i zos'k djus vkSj de ydj fudys vFkkZr~ ?kj esa i zos'k djrs le; nkfguh vksj vf/d j[ks vkSj ck;ha vksj de] i jUrq ;g dFku I oZFkk 'kkL=k&fo#¼ gSA ,rnFkZ fuEufyf[kr i zek.k voyksduh; gS&

**^^uo Hkkx axg Ñ Rok i ×p Hkkx ar qnf{k.k rk A**

**f=kHkkx eqÙkjs d k;± 'ks"ka }kj a i zdhfrZr e~A**

**nf{k.k kÄ ¼% I o Si kSÙkkr kse fUnjkfUn%** **rsl fr A**

**; ksHkkxkn~nf{k. ksHkkx so ke sHkwkr ~l o ke x %*AA**

}kj dh yEckbZ&pkSM+kbZ dk fopkj ?kj dh yEckbZ oQ I kpos Hkkx esa û ø t ksM+dj ; ksi Qy esa ø dk Hkkx nsus I s tks yC/ vkos mI s; ksi Qy esa tksM+ nsus I s tks vk, }kj dh pkSM+kbZ gksrh vkSj pkSM+kbZ dh frxquh Åapkbz gksrh A

**d ksus esa njokt s dk fu"ks/**

**^^}kj ek; ker% d k;± i ejikS/ ui zne A**

**foLrkj d ks.ka }kja; n~n%[kK kksd Hk; i zne******AA**

**(ok0 n0)**

vk;ke (nS/;Z) I s njokts dk fuekZ.k djkus i j ijelS[;ok/u dh i kfIr vkSj pkSM+kbZ oQ dksus esa njokts dk fuekZ.k djkus i j nq[k] 'kksd vkSj Hk; dh i kfIr gksrh gSA

**}kj oQ I keus }kj cukus dk fu"ks/ %&**

**^^}kj L; ksfj ; n~}kja }kja}kj L; I Ee[kq kes A**

**u d k; ±Q ; na; Pp I Ä d Var nnfja Ñ r******AA**

**(okLrqjRuk0)**

}kj oQ Åij dk }kj vkSj }kj oQ I keus dk }kj Qk; dkjh ugha gksrk] cfYd nfjærk nsus okyk gksrk gSA

**?kj oQ chp esa }kj dk fu"ks/ %**

**^^fHkfÙkeè; sÑ r a }kja aaQ &/ kU; &fouk' kue~A**

**vkog Rd yga 'kksda ukjhnaok I Ei zn½k; s******AA**

fdI h Hkh fnokj ds e/; esa oQ chp LFkku esa njokt k j[kus I s /u/kU; dk uk'k gksrk gSA vFkok I oZnk dyg gksrk jgrk gS, kfL=k;ka esa nks"k i Sn k gks tkrk gSA

**fo'ks"k fopkj %&** nsorkvks dk efUnj] Hkou (I k/kj.k edku) i zkxg (I oZ/kj.k Hkou) e.Mi] xyh rFkk ;Ke.Mi bu sb oQ chp esa chp njokt k cuk;k tk I drk gSA

**?kj dh Åapkbz dk fopkj %&&**

?kj dh yEckbZ esa ö I s Hkkx nsa yC/ gkFk gksa A 'ks"k dks üp I sxq.kk djs oQ uo%ù dk Hkkx nsA og vaxqy gksxkA vc i zFke yC/ esa p tksM+ ns og Hkou dh Åapkbz j[kuh pkfg,A ;g Åapkbz }kj 'kk[kk oQ rg I s Åij dh vksj tkuuh pkfg, u fd xyh ;k vkxu I sA ;fn nqljk rYyk cukuk gks rks igys rYys dh Åapkbz dks ckjg Hkkx djsa yC/ ft ruk vÄxqy vkos mruk gh de nwljs rYys dh Åapkbz j[kuh pkfg,A bl h i zdkj rhljs vkSj pkSFks rYys dh Åapkbz Hkh tkuuh pkfg,A

❑

# भागवत्कृपा से हुआ भारतवर्ष में जन्म

जहाँ भगवत्कथा की अमृतमयी सरिता नहीं बहती, जहाँ उसके उद्‌गमस्थान भगवद्‌भक्त साधुजन निवास नहीं करते और जहाँ नृत्य-गीतादि के साथ बड़े समारोह से भगवान की पूजा-अर्चना नहीं की जाती वह देश चाहे ब्रह्मालोक ही क्यों न हो उसका सेवन नहीं करना चाहिए। जिन जीवों ने इस भारत वर्ष में ज्ञान-तदनुकूलकर्म तथा द्रव्यादि सामग्री से सम्पन्न मनुष्य शरीर में जन्म लेते हैं, वे यदि आवागमन के चक्र से निकलने का प्रयत्न नहीं करते तो व्याध की फाँसी से छूटकर भी फलादि के लोभ से उसी वृक्ष पर निवास करने वाले वनवासी पक्षियों के समान फिर बन्धन में पड़ जाते हैं।

भगवान सकाम पुरुषों के माँगने पर उन्हें अभीष्ट पदार्थ देते हैं; परन्तु यह भगवान का वास्तविक धन नहीं है; क्योंकि उन वस्तुओं को प्राप्त कर लेने पर भी मनुष्य के मन में पुन: कामनाएँ होती ही रहती हैं। इसके विपरीत जो भगवान का निष्कामभाव से भजन करते हैं, उन्हें भगवान साक्षात् अपने चरणकमल दे देते हैं जिससे अन्य समस्त कामनाएँ समाप्त हो जाती हैं। अत: श्रीनारायण के चरणकमलों की स्मृति सदा होती रहे ऐसी प्रार्थना करते रहना चाहिए।

भगवान की निर्हेतुक कृपा से मानव शरीर मिलता है। इसीलिए वैकुण्ठवासी परमाचार्य श्रीस्वामी-पराङ्कुशाचार्य जी महाराज ने हिन्दी पद्य में इस रहस्य को प्रकट किया है—

**भगवान की उदारता**

श्रीनिवास भगवान हमहि अपने अपनाये जी ।।
ग्रन्थन में यह मिलत सवन में, नर तन सुर दुर्लभ भारत में।
दे कर के भगवान हमहि, वैष्णव बनवाये जी ।।
पञ्चरात्र से शास्त्र मनोहर, गीता के ज्ञानों अति सुन्दर,
ऐसे वचन सुनाय सुगम, मारग बतलाये जी ।।
भाष्यकार के चरण लगाकर, भगवत जन को सुहृद् बनाकर,
इनकर सेवा देकर सुलभ, उपाय बताये जी ।।
दीन-हीन लख कृपा किये प्रभु,
आरत हर गुण प्रकट किये हरि,
युगल चरण अति सुन्दर, सिद्ध उपाय बताये जी ।।

❑

**पृ० १९ का शेषांश**

(९) यज्ञ से आध्यात्मिक, दैविक और आधि-भौतिक तापत्रय की निवृत्ति होती है।
(१०) यज्ञ से शत्रु मित्र बनते हैं।
(११) यज्ञ से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों की प्राप्ति होती है।
(१२) यज्ञ से मनुष्य के पापों का प्रायश्चित्त होता है।

यज्ञ तीन प्रकार के होते हैं—(१) सात्त्विक, (२) राजस और (३) तामस।

फल की इच्छा से रहित पुरुषों के द्वारा शास्त्र विधि से भगवान की उपासना रूप यज्ञ सात्त्विक यज्ञ होता है। यह मानव को भव-बन्धन से छुड़ाता है। जो यज्ञ धन-पुत्र तथा स्वर्गादि के उद्देश्य से किया जाता है, उसे राजस यज्ञ कहते हैं। यह यज्ञ बन्धन कारक होता है। जिस यज्ञ के अनुष्ठान में विधि, मन्त्र, दक्षिणा और श्रद्धा पर ध्यान न देकर तथा अन्याय से उपार्जित धन का उपयोग किया जाय, उसे तामस यज्ञ कहते हैं। यह यज्ञ मानव के अध:पतन में कारण बनता है। अत: कल्याण चाहने वाले मानव को सात्त्विक यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये। ❑

# वरदवल्लभा स्तोत्र का अनुशीलन—(३)

—डॉ० राजदेव शर्मा
लक्ष्मी-नारायण मन्दिर
लखीबाग, गया (बिहार)।

वरदवल्लभा स्तोत्र के प्रथम श्लोक की मीमांसा इसके पूर्व दो खण्डों में की गई। इसका दूसरा स्तोत्र है—

**यस्यास्ते महिमानमात्मन इव त्वद्वल्लभोऽपि**
**प्रभुर्नालं मातुमियत्तया निरवधिं नित्यानुकूलं स्वतः।**
**तां त्वां दास इति प्रपन्न इति च स्तोष्याम्यहं निर्भयो**
**लोकैकेश्वरि लोकनाथदयिते दान्ते दयां ते विदन्।।**

उपर्युक्त श्लोक का सामान्य अर्थ है—हे समस्त लोकों की ईश्वरि! हे लोकनाथ (विष्णु) की प्रिये! आप सदा अनुकूल स्वभाववाली हैं। आपकी असीम महिमा है। आपकी महिमा को परिच्छेद (सीमित) करके जानना आपके सर्वशक्तिमान पति के लिए भी कठिन है। यह जानते हुए भी मैं निर्भय होकर आपकी स्तुति में प्रवृत्त हूँ; क्योंकि मैं आपका दास हूँ, प्रपन्न हूँ और आपकी दया को भी जानता हूँ।

आचार्य प्रवर ने प्रथम श्लोक 'कथं ब्रूमः' कहकर सर्वविध स्तुत्य भगवती लक्ष्मी का उत्कर्ष बतलाया था। इस श्लोक में उनकी श्रेष्ठता का पुनः अन्य रीति से वर्णन कर रहे हैं। वे एक ओर जहाँ भगवती के सौलभ्य गुण का अनुसन्धान करते हैं वहीं दूसरी ओर अपनी दशा का भी प्रकाशन करते हैं। स्तोता दया के पात्र है, इस आत्मचिन्तन के पृष्ठाधार पर वे स्तुति करने का औचित्य बतलाते हैं। स्मरणीय है कि यहाँ 'यस्याः' शब्द का प्रयोग ही पर्याप्त था, किन्तु 'ते' अक्षर का भी व्यवहार हुआ है; क्योंकि लक्ष्मी के असीम गुणों का श्रुति-स्मृत्यादि शास्त्रों में प्रचुर प्रमाण उपलब्ध है।

आचार्यचरण कहते हैं कि स्वयं माता लक्ष्मी अपनी महिमा को नहीं जानती हैं। साथ ही उनके पति सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान होते हुए भी भगवती की महिमा पूर्णरूपेण नहीं जानते हैं। वत्सांक मिश्र ने लिखा है—हे देवि! यद्यपि आपकी असीम महिमा को हरि भी नहीं जानते और आप भी नहीं जानती हैं। तथापि आप दोनों की सर्वज्ञता का कुछ भी क्षरण नहीं होता है; क्योंकि जो नहीं है उसे नहीं जानना सर्वज्ञता को न्यून नहीं करता है।

भगवती की महिमा नित्य अनुकूल है। अर्थात् उनमें अननुकूलता है ही नहीं। जिसमें सदा अनुकूलता रहती है, वही प्राप्य होता है। भगवती और भगवान सदा जीवों के अनुकूल रहते हैं। अत एव ये दोनों जीवों के लिए प्राप्तव्य हैं। हमारे वैदिक कवियों ने अनन्त महिमाशालिनी लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए प्रार्थना की है; क्योंकि वह प्राप्तव्य हैं। श्री-सूक्त में आया है—

**आर्द्रां यः कारिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम्।**
**सूर्यां हिरण्यमयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह।।**

अर्थात् हे अग्नि देव! जो दुष्टों का निग्रह करने वाली होने पर भी कोमल स्वभाववाली हैं, जो मङ्गल दायिनी, अवलम्ब प्रदान करने वाली यष्टिरूपा (छड़ीस्वरूपा), सुन्दर वर्ण वाली, सुवर्णमाला धारिणी, सूर्यस्वरूपा तथ हिरण्यमयी हैं, उन लक्ष्मीदेवी का मेरे लिए आवाहन करें।

वैदिक ऋषियों को यह अनुभूति होती है कि लक्ष्मी में असीम तेज-प्रताप है तथा माता अनन्त महिमा शालिनी हैं। देवी-सूक्त में वह अपनी महिमा का किञ्चित् बखान करती हैं। वह कहती हैं—मैं ही सम्पूर्ण जगत् की ईश्वरी हूँ। मैं उपासकों को उनके अभीष्ट धन प्राप्त कराने वाली हूँ। सम्पूर्ण प्रपञ्च में मैं ही अनेक रूपों में विराजमान हूँ। सम्पूर्ण प्राणियों के शरीर में जीवनरूप में मैं अपने आप को प्रविष्ट

करके रहती हूँ। सम्पूर्ण विश्व के रूप में अवस्थित होने के कारण जो कोई जो कुछ करता है, वह सब मैं ही हूँ।

इस प्रकार की महिमा वाली लक्ष्मी सौलभ्य गुण के कारण आचार्य चरण द्वारा प्रणीत स्तोत्र को सुनने के लिए तत्पर हैं। मैं दास हूँ और प्रपन्न भी। मैं जानता हूँ कि स्वामी अपने दास के अपराधों को क्षमा कर देते हैं और प्रपन्न पुरुष की रक्षा का भार शरण्य के ऊपर रहता है—**'योगक्षेमं वहाम्यहम्'**। इन सभी तथ्यों से स्तोता अवगत है।

यहाँ एक संदेह होता है, एक प्रश्न उठाया जाता है कि जो केवल नारायण के परायण हैं, जिनकी मति केवल नारायण में ही रमण करती है या जो केवल नारायण में ही निष्ठा रखते हैं, वे नारायण से भिन्न श्री (लक्ष्मी) की प्रपत्ति कैसे करते हैं? क्या ऐसा करने से उनकी एकनिष्ठता या परमैकान्त्य में बाधा नहीं पड़ती है? क्या उनका एकान्तमतित्व भङ्ग नहीं होता है? इन प्रश्नों के उत्तर में हमारे पूर्वाचार्यों का मत है कि यह ठीक है, मुमुक्षु को भगवत्प्राप्ति के लिए ही प्रपत्ति करनी चाहिए। यदि मुमुक्षु भगवान् विष्णु को छोड़कर लक्ष्मी की प्रपत्ति करता है तो उसकी एक निष्ठता भङ्ग होती है, ऐसी बात नहीं है; क्योंकि भगवान् की प्रसन्नता के लिए ही श्री की प्रपत्ति की जाती है। जैसे उपासना के लिए कर्मयोग को माध्यम बनाया जाता है वैसे ही नारायण के लिए श्री जी की आराधना की जाती है। विष्णु भक्तों को विष्णुपरिकरों की अर्चना करने से उनके ऐकान्त्य का क्षरण नहीं होता है।

आचार्य निर्भय होकर श्री जी की स्तुति कर रहे हैं। यद्यपि स्तोता को यह ज्ञात है कि श्री जी की महिमा के अनुगुण उनमें ज्ञान और शक्ति नहीं है, फिर भी आचार्य निर्भय होकर स्तुति कर रहे है—'स्तोष्यायहं निर्भय:'। क्यों निर्भय है? इसका उत्तर है कि आप लौकैकेश्वरी हैं। आप समस्त लोकों का करुणायुक्त होकर पालन-पोषण और रक्षण करती हैं। फिर मैं तो प्रपन्न हूँ, शरणागत हूँ। शरणागत सभी प्रकार के भयदायकों से मुक्त हो जाता है। वाल्मीकीय रामायण में भगवान राम का शाश्वत वचन है कि एक बार भी जो प्रपन्न होकर यह कहता है कि 'मैं तुम्हारा हूँ (तवास्मीति), उसे मैं सभी भूतों (जीवों) से भयमुक्त कर देता हूँ। भगवान का यह वचन है—

**सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।**
**अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम।।**

यहाँ 'सर्वभूतेभ्यो' शब्द का प्रयोग अत्यन्त व्यापक अर्थ में किया गया है। चतुर्थी और पञ्चमी–दोनों में इसका ग्रहण किया जाता है। चतुर्थी में अर्थ करने पर यह व्यञ्जित होता है कि यह भगवद्वचन केवल विभीषण के लिए नहीं अपितु सभी के लिए है। पुन: पञ्चमी से अर्थ करने पर यह उद्भाषित होता है कि (१) सभी भूतों को भय से, (२) सभी भूत पदार्थों के भय से और (३) सभी भयदायकों के भयदायक स्वयं (अपने) से भी।

उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि जब स्वयं भगवान (जिनके पास दण्डधरत्व है) भी प्रपन्न को भययुक्त कर देते हैं तो फिर माँ (जिनमें करुणागुण का आधिक्य है) की स्तुति करने में भय का कहाँ स्थान है। फिर माँ तो लोकैकेश्वरी हैं।

**लोकैकेश्वरी**—माँ समस्त लोकों की ईश्वरी हैं। जब वह समस्त लोकों की स्वामिनी है तब फिर अनीश्वर से भय कैसे होगा? 'ईश्वर' शब्द से व्यापन, भरण और स्वामित्व का बोध होता है। ये तीनों गुण परमात्मा नारायण में नित्य निवास करते हैं। ये तीनों गुण पुरुष प्रधान ईश्वर में है। ये पुरुष धर्म हैं। लेकिन आचार्य कहते हैं कि ये सब गुण श्री जी में भी है। इसलिए उन्हें ईश्वरी कहा गया है। ईश्वरा और ईश्वरी समाख्यात हैं।

**लोकनाथदयिते**—दयिता का अर्थ वल्लभा है। लक्ष्मीजी भगवान नारायण की चिर सङ्गिनी हैं और

भगवान को अत्यन्त प्रिय हैं। अतिशय प्रियता के कारण भगवान सदा श्री जी के अधीन रहते हैं तथा उनकी प्रसन्नता के लिए लौकिक-अलौकिक कर्म करते हैं। गुणरत्नकोश में श्री पराशरभट्ट कहते हैं— क्षीरसागर में शयन, समुद्र-मन्थन, समुद्र-बन्धन, शिवधनुर्भङ्ग, रावण-वध–ये सब लीलाएँ भगवान ने श्री जी के लिए की है। पराशरभट्ट यह भी कहते हैं कि आपके संश्लेष से ही यह जाना जाता है कि ईश्वर ऐसा है, उसका ऐसा लक्षण है तथा तत्त्वदर्शीगण ईश्वर का ऐसा वर्णन करते हैं।

पण्डित जन स्वस्ति–वाचन में कहते हैं— 'मङ्गलं भगवान विष्णुः'। अर्थात् भगवान मङ्गलों के मङ्गल हैं। यहाँ जिस 'मङ्गल' पद का प्रयोग किया जाता है, वह भी भगवती श्री के सम्बन्धाधीन है। ईश्वर में मङ्गलत्व किसी अन्य से नहीं वरन श्री के संपृक्त होने से आता है। पर श्री में मङ्गलत्व स्वतः सिद्ध है; उनमें मङ्गल किसी अन्य से नहीं आता है। पुष्प की महत्ता उसकी सौरभ-सुगन्धि से आती है, परन्तु सौरभ का महत्त्व किससे है, यह विश्लेषण करना किञ्चित कठिन है। पुष्प के विष्लेषण में सुगन्धि की अपेक्षा है पर सुगन्धि के निरूपण में अन्य गुणों की अपेक्षा नहीं। अत एव भगवान की भगवत्ता का निरूपण श्री के सम्बन्ध से है; परन्तु श्री के लिए अन्य की अपेक्षा नहीं है। रत्न की महत्ता उसकी प्रभा या कान्ति से है, पुष्प की महिमा उसके सौरभ से है, चन्द्र का महत्त्व उसकी चन्द्रिका से है तथा सूर्य का प्रताप उसकी प्राणदायिनी किरणों से है। उसी प्रकार भगवान श्री के सम्बन्ध से ही प्रकाशित होते हैं—

**पुष्पं सौरभेण, रत्नं प्रभया, चन्द्रश्चन्द्रिकाया, सूर्यो ज्योत्सनयातथैव सर्वेश्वरो श्रीसम्बन्धादेव प्रकाशितः।**

**दान्ते दयां ते विदन्**—आप माता हैं। आपमें मातृत्व का पूर्णतः समाहार है। आप में वात्सल्य का आधिक्य है। आपमें भगवान से भी अधिक करुणा का सञ्चार है। इसलिए आप दान्त पुरुष पर दया करती हैं। ऐसा जानकर मैं निर्भय होकर आपकी स्तुति करने में प्रवृत्त हूँ। यहाँ आचार्यप्रवर कहते हैं कि वे 'दान्त' हैं। जिसमें दास्यभाव की प्रचुरता है, जिसमें कृपा-गुण के प्रसार के लिए दैन्य या कार्पण्य है तथा जिसमें भगवदाज्ञा का उल्लङ्घन करने की कामना का अभाव है, उस पुरुष को 'दान्त' शब्द से अभिहित किया जाता है।

वात्सल्य और अतिशय करुणा-गुण के कारण नारायण और लक्ष्मी में किञ्चित् वैषम्य की संस्थिति है। गुणरत्न-कोश नामक ग्रन्थ में पराशरभट्ट ने कहा है—हे जननि! आपके पति पापियों को (हित-कामना से), कभी-कभी, पिता की तरह, क्रुद्ध होकर दण्ड देने को उद्यत होते हैं। उस समय आप कहती हैं—यह क्या? समस्त संसार में निरपराध कौन है? इन वचनों से आप अपराधियों को दण्ड से बचाकर अपना जन बना लेती हैं। इस गुण के कारण आप नारायण से भिन्न हैं। यही अतिशय वात्सल्य आपको नारायण से भिन्न रूप में प्रस्तुत करता है।

लक्ष्मी और नारायण में आकृति की भी भिन्नता स्पष्ट है। भगवती लक्ष्मी के मुख्यतः दो कार्य हैं। पहला जब उनके पति भगवान विष्णु अपराधियों से क्रुद्ध होकर उनका निग्रह करना चाहते हैं, तब उनको निग्रह करने से वारण करती हैं, रोकती हैं। दूसरा, समय देखकर माता भगवान को अनुग्रह करने के लिए प्रेरित करती हैं। भगवान पिता हैं। उनमें प्रताप, तेज के साथ दण्डधरत्व है। इन गुणों के कारण भक्त भगवान के समक्ष भय खाता है। उनकी प्रपत्ति करना थोड़ा कठिन प्रतीत होता है। श्री की प्रपत्ति करना सरल-सुगम है। अतः भक्त भगवत्प्राप्ति के लिए पहले श्री जी की प्रपत्ति करता है; क्योंकि वह पुरुषकार (सिफारिश करती) हैं। इसलिए पहले श्री जी की प्रपत्ति करने का विधान है। ❑

**(क्रमशः)**

## गृहारम्भ मुहूर्त्त

१. अगहन कृष्ण द्वितीया सोमवार २६/११/२००७ को दिन में १२।१० से १।४१ तक।

२. फाल्गुन कृष्ण द्वितीया शनिवार २३/२/२००८ को दिन में ७।२९ से ८।४८ तक

## गृहप्रवेश मुहूर्त्त

१. पौष शुक्ल द्वादशी शनिवार १९/१/२००८ को प्रात: ८।१२ से ९।४३ तक

२. माघ कृष्ण दशमी शुक्रवार १/२/२००८ को प्रात: ७।२० से ८।५१ तक

३. माघ शुक्ल दशमी शनिवान १६/२/२००८ को प्रात: ९।२८ से ७।५१ तक

४. फाल्गुन शुक्ल षष्ठी गुरुवार १३/३/२००८ को दिन में ११।११ से १।२५ तक

## जीर्ण-गृहप्रवेश मुहूर्त्त

१. कार्त्तिक शुक्ल षष्ठी शुक्रवार १६/११/२००७ को प्रात: ८।३३ से १०।३९ तक

२. कार्त्तिक शुक्ल द्वादशी बुधवार २१/११/२००७ को दिन में ८।१४ से १०।२० तक

३. अगहन कृष्ण एकादशी बुधवार ५/१२/२००७ को प्रात: ७।१८ से ९।२४ तक

## द्विरागमन मुहूर्त्त

**पूर्व से पश्चिम, ईशान से नैऋत्य कोण के लिए–**

कार्त्तिक शुक्ल द्वादशी बुधवार दिनाङ्क २१-१०-२००७ को दिन में २।३ से ३।३० तक।

**पूर्व से पश्चिम, ईशान कोण से नैऋत्य कोण के लिए—**

अगहन कृष्ण पञ्चमी गुरुवार दिनाङ्क २९-११-२००७ को दिन में १।२९ से ३ बजे तक।

**उत्तर से दक्षिण, वायुकोण से अग्निकोण के लिए—**

अगहन कृष्ण नवमी सोमवार दिनाङ्क ३-१२-२००७ को दिन में १।१२ से २।३९ तक।

**पूर्व से पश्चिम, उत्तर से दक्षिण, ईशान कोण से नैऋत्य कोण, वायुकोण से अग्निकोण के लिए**

माघ शुक्ल द्वादशी सोमवार दिनाङ्क १८-२-२००८ को प्रात: ७।४० से ९।८ तक
पुन: १०।४६ से १।३० तक (दिन में)।

पूर्व से पश्चिम, ईशान से नैऋत्य, उत्तर से दक्षिण, फाल्गुन कृष्ण चतुर्थी सोमवार
दिनाङ्क २५-२-२००८ को दिन में ११।१५ से २।२८ तक।

**पूर्व से पश्चिम, ईशान कोण से नैऋत्य कोण के लिए—**

फाल्गुन कृष्ण सप्तमी गुरुवार दिनाङ्क २८-२-२००८ को प्रात: ७ बजे से ८।२९ तक
पुन: १०।६ से २।१६ तक।

**पूर्व से पश्चिम, ईशान कोण से नैऋत्य कोण के लिए—**

फाल्गुन शुक्ल तृतीया सोमवार दिनाङ्क १०-३-२००८ को प्रात: ६।२१ से ७।४८ तक
पुन: ९।२६ से १।३५ तक (दिन में)।

**उत्तर से दक्षिण, वायुकोण से अग्निकोण के लिए—**

फाल्गुन शुक्ल षष्ठी गुरुवार दिनाङ्क १३-३-२००८ को दिन में ९।१५ से १।२४ तक।

।। श्रीमते रामानुजाय नमः।।

**अनन्तश्री विभूषित-**
**स्वामी रङ्गरामानुजाचार्य जी महाराज**
**द्वारा सङ्कल्पित-**

## श्रीधाम वृन्दावन में

# श्रीलक्ष्मीनारायण-महायज्ञ

**गोवर्द्धनो गिरिवरो यमुना नदी सा वृन्दावनं च मथुरा च पुरी पुराणी।**
**अद्यापि हन्त सुलभाः कृतिनां जनानामेते भवच्चरण चारजुषः प्रदेशाः ॥**

धर्मानुरागी सज्जनों!

परब्रह्म श्रीकृष्ण के चरणस्पर्श से पवित्र गिरिराज गोवर्द्धन, यमुना नदी, वृन्दावन, प्राचीनपुरी मथुरा आदि स्थल विशेष का दर्शन पुण्यात्मा भाग्यवान् को ही सुलभ होते हैं; क्योंकि उपर्युक्त स्थान भगवान के सुन्दर चरणों द्वारा परम प्रिय अवस्था से सेवित रहे हैं। इन दिव्य क्षेत्रों की प्राप्ति आचार्यानुग्रह के विना सम्भव नहीं होता। इन स्थानों का दर्शन हम सभी भक्तों को सुलभता से प्राप्त हो जाय एतदर्थ **अन्तःकरुणा प्रवण धर्मसम्राट अनन्तश्री विभूषित स्वामी रङ्गरामानुजाचार्य जी महाराज** स्थानाधीश काशी, वृन्दावन (उ०प्र०) सरौती, हुलासगंज (गया, बिहार) द्वारा **श्रीलक्ष्मीनारायण-महायज्ञ श्रीधाम वृन्दावन** में **दिनाङ्क 10.03.2008, दिन सोमवार तदनुसार फाल्गुन शुक्ल तृतीया से 14.03.2008, दिन शुक्रवार फाल्गुन शुक्ल सप्तमी तक** सङ्कल्पित है।

अतः आप सभी प्रेमी भक्तों से अनुरोध है कि पूज्यपाद स्वामी जी महाराज द्वारा सङ्कल्पित श्रीलक्ष्मीनारायण-महायज्ञ में तन-मन-धन से सहयोग करते हुए यज्ञ में सम्मिलित होकर अपने मानव जीवन को सफल बनावें।

## कार्यक्रम

| | |
|---|---|
| 22-02-2008 से 14-03-2008 तक | अखण्ड हरिनाम संकीर्तन |
| 22-02-2008 से 28-02-2008 तक | श्रीमद्भागवत सप्ताह कथा |
| 28-02-2008 से 07-03-2008 तक | श्रीमद्वाल्मीकि रामायण नवाह्न कथा एवं हरिवंश नवाह्न-कथा |
| 09-03-2008 | कलश शोभायात्रा, मृतिकाहरण, जलाहरण |
| 10-03-2008 से 14-03-2008 तक | मुख्य यज्ञ (वेदी पूजन, हवन तथा सन्तों का प्रवचन एवं रात्रि में रास-लीला, सांस्कृतिक कार्यक्रम एवं विशाल-भण्डारा) |

निवेदक—
**यज्ञ-समिति**
श्रीलक्ष्मीनारायण-महायज्ञ
श्रीधाम वृन्दावन, तटिया आश्रम देवराहा बाबा आश्रम के सामने यमुना के दक्षिण तट पर
सम्पर्क सूत्र-
0565-6520277
0-9897788950

# वेदप्रतिपादित-यज्ञविज्ञान

— **वरदराज**
शोधच्छात्र, संस्कृत-विभाग, का०हि०वि०वि०, वाराणसी

वेद विश्ववाङ्मय में अद्वितीय शब्द ब्रह्म है। इसमें निहित कल्याणकारी यज्ञविज्ञान ने भारत के मस्तक को सम्पूर्ण विश्व में ही नहीं अपितु ब्रह्माण्ड में भी ऊँचा किया हुआ है। मनुष्य के लौकिक तथा पारलौकिक जीवन को सुखमय बनाने का सर्वोत्तम पथ-प्रदर्शक यज्ञविज्ञान ही है। यज्ञविज्ञान के वैशिष्ट्य के विषय में विभिन्न ग्रन्थों के साथ-साथ वेद-पुराण तथा महाभारतादि में विशेष रूप से प्रतिपादन हुआ है। वेद में यज्ञ के सम्बन्ध में जितने अधिक मन्त्र हैं उतने मन्त्र यन्य किसी विषय पर नहीं हैं। इसीलिए यज्ञ को वेद का प्राण कहा जाता है।

यज्ञ की परम्परा अनादिकाल से अक्षुण्ण है; क्योंकि जितना यज्ञ से ऐहिक तथा पारलौकिक लाभ होता है, उतना अन्य किसी उपाय से नहीं। साथ ही यज्ञविज्ञान को पर्यावरण का भी महान् शोधक माना जाता है।

यज् धातु से **यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षोनङ्**[1] इस पाणिनीय सूत्र से नङ् प्रत्यय श्चुत्व तथा **अर्ञोज्ञ** से ज्ञ आदेश करने पर यज्ञः यह शब्द निष्पन्न होता है। यज् धातु **यज् देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु** के अनुसार तीन अर्थों में प्रयुक्त होती है।

**यज्ञलक्षण**—मानवों के क्रमोन्नतिकारी धर्मसम्बन्धी साधन को यज्ञ कहते हैं या ईश्वर की प्रसन्नता के लिए जो कैङ्कर्य किया जाय उसे यज्ञ कहते हैं। भगवान् वेदव्यास ने मत्स्यपुराण में यज्ञ का लक्षण इस प्रकार उद्धृत किया है—

**देवानां द्रव्यहविषां ऋक्सामयजुषां तथा।**
**ऋत्विजां दक्षिणानां च संयोगो यज्ञ उच्यते।।**[2]

१. पाणिनीय सूत्र संख्या–३/३/९०

२. मत्स्यपुराणम्, अ०-१४५/४४

अर्थात् जिस कर्मविशेष में देवता, हवनीय द्रव्य, वेदमन्त्र, ऋत्विज् और दक्षिणा इन पाँचों का संयोग हो उसे यज्ञ कहते हैं।

**यज्ञभेद**—प्रधानरूप से यज्ञ के दो भेद शास्त्रों में निर्दिष्ट हैं—श्रौत और स्मार्त। श्रुतिप्रतिपादित यज्ञों को श्रौतयज्ञ तथा स्मुतिप्रतिपादित यज्ञों को स्मार्तयज्ञ कहते हैं, जिसमें वैदिक, पौराणिक और तान्त्रिक मन्त्रों का प्रयोग होता है।

वेद में विविध प्रकार के यज्ञों का प्रतिपादन किया गया है; किन्तु ऐतरेयब्राह्मण में अधोलिखित पाँच प्रकार के ही विशिष्ट यज्ञ माने गये हैं—**स एष यज्ञः पञ्चविधः-अग्निहोत्रम्, दर्शपूर्णमासौ, चातु-र्मास्यानि, पशुः, सोम इति।**[1]

अर्थात् अग्निहोत्र, दर्शपौर्णमास, चातुर्मास, पशु और सोम-ये पाँच यज्ञों में श्रुति प्रतिपादित वैदिक अन्यान्य यज्ञों का अन्तर्भाव हो जाता है।

भगवान् श्रीकृष्ण की साक्षात् वाणी स्वरूप श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार चौदह प्रकार के यज्ञ बताये गये हैं। जिसमें प्रत्येक यज्ञ सात्त्विक, राजस् और तामस भेद से तीन प्रकार के होते हैं।

जो यज्ञ फल की अभिलाषा से रहित तथा शास्त्रविधि से श्रद्धापूर्वक विशुद्ध मन से किया जाय वह सात्त्विक यज्ञ है—

**अफलाकाङ्क्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते।**
**यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः।।**[2]

जो उपासना स्वर्गादि फलोद्देश्यपूर्वक धार्मिकता की प्रसिद्धि के लिए दम्भ में आकर किया जाता है उसे राजस् यज्ञ कहते हैं।

१. ऐतरेयब्राह्मण

२. श्रीमद्भगवद्गीता–१७/११

**अभिसन्धाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत् ।**

**इज्यते भरतश्रेष्ठ! तं यज्ञं विद्धि राजसम् ।।**[१]

जिस यज्ञ में फल की आकाङ्क्षा तो प्रबल हो; परन्तु शास्त्र विधि से रहित अन्यायोपार्जित अन्न, श्रद्धाहीन, मन्त्रहीन तथा दक्षिणाहीन ऐसे जो अनुष्ठान हैं उसे तामस यज्ञ कहते हैं—

**विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम् ।**

**श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ।।**[२]

उपर्युक्त विविध यज्ञों में सर्वोत्तम सात्त्विक यज्ञ को ही कहा गया है। सात्त्विक यज्ञजनित पुण्य वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार कालान्तर में अपूर्व फल को प्रदान करने वाला होता है, जो कि अक्षय होता है।

यज्ञ के विषय में महानारायणोपनिषद् में लिखा है कि यज्ञ के द्वारा ही देवताओं को स्वर्ग की प्राप्ति होती है, यज्ञ के द्वारा ही आसुरी शक्ति का दमन होता है, यज्ञ के द्वारा शत्रु भी मित्र हो जाते हैं और उसमें ही सकल ब्रह्माण्ड की प्रतिष्ठा है।

**यज्ञेन हि देवादिवङ्गता यज्ञेनासुरानपानुदन्तः, यज्ञेन हि द्विषन्तोमित्रा भवन्ति, यज्ञे सर्वं प्रतिष्ठितं, तस्माद्यज्ञं परमं वदन्ति ।।**[३]

यज्ञों के विषय में भारतीय दर्शन कहता है कि श्रद्धा के साथ विधि-विधानपूर्वक यज्ञों को पूर्णकर देने पर अपूर्व पुण्य उत्पन्न होता है जिससे इहलोक और परलोक में अद्वितीय परम सुख मिलता है। इसका वर्णन रामायण तथा पुराणों में प्रचुर मात्रा में मिलता है। महाभारत में भी कहा गया है—

**नातप्ततपसः पुंसो नामहायज्ञयाजिनः ।**

अर्थात् तप से हीन, यज्ञ अनुष्ठानरहित, मिथ्या-भाषी और नास्तिक मनुष्य स्वर्ग सुख को चाहने पर भी प्राप्त नहीं कर सकते हैं। अत: स्वर्ग सुख की

१. श्रीमद्भगवद्गीता–१७/१२

२. श्रीमद्भगवद्गीता–१७/१३

३. महानारायणोपनिषद्–खण्ड २३/१

कामना करने वाले लोगों को वेद प्रतिपाद्यप्रयोजनवान् यज्ञविज्ञान का आश्रय लेना ही होगा। साथ ही पूर्व में कहा जा चुका है कि यज्ञविज्ञान पर्यावरण का महान् शोधक माना जाता है। केवल अग्नि में आहुतियों को समर्पित करना ही यज्ञ नहीं है अपितु यज्ञ एक भावना विशेष है, जो समस्त पर्यावरण को प्रभावित करती है, आनन्दित करती है। इसके द्वारा अकारण स्वार्थवशीभूत हिंसा का निषेध किया गया है। स्थूलदृष्टि से भी देखा जाय तो हिंसा होने पर भौतिक प्रदूषण, आन्तरिक वैमनस्यता के साथ-साथ मानसिक प्रदूषण से भी मनुष्य प्रभावित हुए विना नहीं रह सकता। इस प्रकार यज्ञ का मुख्य तत्त्व भौतिक द्रव्यों से ममत्व बुद्धि का त्यागपूर्वक समर्पण और दिव्य प्रकाशमय ज्ञान की प्राप्ति का प्रतीक है।

वस्तुत: वैदिक यज्ञ मूलत: आध्यामिक भावनात्मक अथवा सर्गात्मक यज्ञ है। इसीलिए यज्ञ का यजन करने का पुरुष-सूक्त में उल्लेख है।

सर्वप्रथम सर्ग के आदि में सकल प्राकृतिक शक्तियों ने परमेश्वर की पूजाकर सृष्टि निर्माणरूपी यज्ञ में सहायता प्रदान की।

**यज्ञेन यज्ञमयजन्तदेवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।**

**तेहनाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वेसाध्याः सन्ति देवाः ।।**[१]

यह यज्ञ सृष्टि के साथ-साथ अध्यात्मिक भी है। प्रजापति के प्राणरूप देवताओं ने मानसिक सङ्कल्परूप यज्ञ के द्वारा यज्ञस्वरूप प्रजापति (ब्रह्मा) का यजन किया अर्थात् उनकी पूजा की। **देवाः प्रजापतिप्राणरूपा यज्ञेन यथोक्तेन मानसेन सङ्कल्पेन यज्ञं यथोक्तयज्ञस्वरूपं प्रजापतिमयजन्त, पूजितवन्तः ।**[२]

अथवा योगियों ने समाधिरूप यज्ञ के द्वारा नारायणात्मक यज्ञदेव का यजन किया।[३] श्री अरविन्द

१. ऋग्वेद–१०/९०/१६

२. ऋग्वेद–१०/९०/१६ भाष्य-सायण एवं महीधर

३. 'एवं योगिनोऽपि दीपनाद् देवायज्ञेन समाधिना नारायणाख्यं ज्ञानस्वरूपमयजन्त'। —(ऋग्वेद–१०/९०/१६, उवट)

के अनुसार यज्ञ का अभिप्राय आत्मशक्ति का विभुशक्ति से संयोग करना यही समाधि की अवस्था है। गीताकार ने इसे गीता में ब्रह्महवि का ब्रह्म में अर्पण कहा है।[1]

यज्ञविज्ञान का स्पष्ट उल्लेख अर्थवेद में यह है कि परमात्मा ने महान् व्यापक सृष्टि के मूलतत्त्व (प्रकृति) से तैंतीस लोकों का निर्माण किया और तदनन्तर उनके ज्ञानार्थ उसने यज्ञविज्ञान का सृजन किया।[2]

यज्ञविज्ञान का सृष्टिविज्ञान के साथ अत्यन्त ही अनुपम सम्बन्ध है, जिसका रहस्योद्घाटन भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में किया है। जैसे समस्त प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं, अन्न सुवृष्टि से उत्पन्न होता है, वृष्टि यज्ञ के द्वारा होती है, यज्ञकर्त्ता के व्यापार रूप द्रव्यो-पार्जनादि रूप कर्म से समुत्पन्न होता है।[3] कर्म प्रकृति से होता है, प्रकृति का अस्तित्व ब्रह्मसत्ता से है, इसलिए सर्वव्यापी ईश्वर यज्ञरूपी धर्म में प्रतिष्ठित है।[4]

यज्ञविज्ञान का कलेवर अत्यन्त ही सुविस्तृत तथा सुसंस्कृत है। यज्ञ से मनुष्यों को आध्यात्मिक, दैहिक तथा भौतिक शक्ति प्राप्त होती है। यज्ञ मानसिक शुद्धि तथा वाचिक शुद्धि का भी प्रतीक है। यज्ञ पवित्रता, स्वच्छता और अहिंसा के लिए भी प्रेरित करता है। इतना ही नहीं अपितु यज्ञ औषधि-वनस्पतियों के प्रति भी अहिंसात्मक भावना रखता है। इसीलिए यज्ञारम्भ में यज्ञ कर्त्ता प्रतिज्ञा करता है कि धरातल पर स्थित औषधियों के मूल की हिंसा नहीं करूँगा।[1]

पर्यावरण की रक्षा के लिए छोटी-सी छोटी लता-पुष्प-पत्रादि का भी अत्यन्त महत्त्व है। अत: यज्ञ में प्रार्थना की जाती है कि मही पर द्युलोक से वृष्टि हो।[2]

इस प्रकार यज्ञविज्ञान के माध्यम से ही पर्यावरण का रक्षण सम्भव है। इसीलिए हारीतस्मृतिकार ने कहा है—

**यज्ञेन लोका विमला भवन्ति यज्ञेन देवा अमृतत्वमाप्नुयुः ।**

**यज्ञेन पापैर्बहुभिर्विमुक्तः प्राप्नोतिलोकान् परमस्य विष्णोः ।।**

अर्थात् यज्ञ से समस्त लोक-लोकान्तर निर्मलता एवं मनोहरता को प्राप्त करते हैं। यज्ञ से देवगण अमृतत्व को प्राप्त करते हैं। यज्ञ द्वारा प्राणी अनेक पापों का प्रक्षालन कर परमपद की प्राप्ति करते हैं।

यज्ञों से संतुष्ट होकर देवता यज्ञकर्त्ता का लोक में अभ्युदय की कामना करते हैं और यज्ञों के द्वारा दोनों का कल्याण होता है। अत: कालिकापुराण में कहा गया है कि यज्ञ ही समस्त चराचर स्थावर-जङ्गम जीवों का प्रतिष्ठापक है, सम्पूर्ण जगत् ही यज्ञमय है—**सर्वं यज्ञमयं जगत्**।[3]

इस प्रकार वेदप्रतिपादित यज्ञविज्ञान की महिमा को समझ हमारे आर्ष ऋर्षि-मुनियों ने उसे जीवन में आत्मसात् कर मानवमात्र का कल्याण किया, यह सुविचारित तथ्य है।

❑

---

१. ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ।।
(श्रीमद्भगवद्गीता–४/२४)

२. एतस्माद्वा ओदनात् त्रयस्त्रिंशतं लोकन्निरमिमीत प्रजापति: ।
तेषां प्रज्ञानाय यज्ञमसृजत ।।
—(अथर्ववेद–११/३/५२-५३)

३. अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भव: ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञ: कर्मसमुद्भव: ।। —(गीता–३/१४)

४. तस्मात्सर्वगतं ब्रह्मनित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ।—(गीता–३/१५)

---

१. पृथिवि देवयजन्योषध्यास्ते मूलं मा हिंसिषम्।
—(वाशकल संहिता–१/२५)

२. व्रजङ्गच्छ.............वर्षतु तेद्यौ: । —(वा०सं०–१/२६)

३. कालिकापुराण–३१/४०